छात्रहितकारी-पुस्तकमाला नं० २७

दूध ही अमृत है

केचिद्वदंत्यमृतमस्ति सुरालयेषु, केचिद्वदंति शशितारकमंडलेषु ।
ज्ञातं सदा सकलशास्त्रविचारदक्षैः, भूलोक-प्राणिजन-जीवन-शुद्ध-दुग्धे ॥

जगत-प्राणिजन-जीवन सचमुच, 'सुधा' नाम पानेवाला;
द्रव्य कहीं कोई है तो वह, शुद्ध दूध का है प्याला ॥

बाबू हनुमानप्रसाद गोयल,
बी० ए०, एल्-एल्० बी०

प्रस्तावना

प्रकाशक महोदय का आग्रह है कि मैं "दूध ही अमृत है" नामक पुस्तक की प्रस्तावना लिखूँ। जितना सोचता हूँ, उतना ही समस्या जटिल दिखलाई पड़ती है। यदि उनका अनुरोध नहीं मानता तो मित्रता के नाते अनुरोध न मानने का दोषी ठहरता हूँ और यदि लिखने के लिये लेखनी उठाता हूँ तो लेखक महोदय ने कोई भी बात ऐसी नहीं छोड़ी जिसकी पूर्ति मैं प्रस्तावना में कर सकूँ। फिर भी लिखने की रस्म अदा करूँगा ही।

दूध का विषय एक ऐसा विषय है, जिसकी ओर इस समय संसार की सारी जातियों की दृष्टि विशेष रूप से आकर्षित है। हम भारत-वासियों के लिये तो दूध का प्रश्न जीवन और मरण का प्रश्न है। कोई समय था जब कि हमारे देश में जैसा कि, कहा जाता है—दूध की नदियाँ बहा करती थीं। कोई आर्य न रहा होगा जिसके यहाँ एक दो या इससे अधिक गौयें न पाली जाती रही हों। दूध के गुण की अपार महिमा के कारण ही गौ अत्यन्त पूजनीय माता के समान मानी गई है। समय ने पलटा खाया और देश की अवस्था भी कुछ से कुछ हो गई। जिन नवयुवकों के ऊपर देश को आशा थी उनकी अवस्था शोचनीय हो गई है। यौवन आज भारतवासियों के जीवन से लापता सा होता जा रहा है। वह एक स्वप्न की स्मृति मात्र बन रहा है। यौवन के ढाँचे में जरा का आभास हो रहा है। पिचके गाल, धँसी आँखें, कृश कलेवर, झुकी कमर, निस्तेज मुखमंडल, यही आधुनिक युवक युवतियों की रूप-रेखा है। आखिर इसका कारण क्या है? कारण अनेक हो सकते हैं, और शायद हों भी, पर सबसे मुख्य कारण दूध का अभाव तथा उसकी ओर से उदासीनता है।

मैं कह सकता हूँ कि लेखक ने 'दूध ही अमृत है' नाम की पुस्तक को लिख कर हिन्दी-भाषा-भाषियों की बड़ी सेवा की है। एक तो इस देश में दूध का अभाव ही है, किन्तु जिन

थोड़े मनुष्यों को दूध पीने का सौभाग्य प्राप्त है, वे दूध के विषय में केवल इतना ही जानते हैं, कि यह एक पुष्टिकारक पेय पदार्थ है। यहीं तक उनका ज्ञान परिमित है। लेखक ने वैज्ञानिक रूप से इसकी विवेचना करके ऐसी उपयोगी सामग्री उपस्थित की है, कि साधारण हिन्दी का ज्ञाता भी इस विषय का यथेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

मेरा अपना विचार है कि दूध से उत्तम और पूर्ण भोजन संसार में दूसरा नहीं है। इसके अन्दर भोजन के वे सारे अंश वर्तमान हैं, जिनके सेवन से हमारा शरीर बढ़ता और बलवान होता है। और जितने भोज्य पदार्थ हैं, उनमें किसी में कोई और किसी में कोई विटामिन मौजूद रहते हैं, परन्तु दूध ही एक ऐसा पदार्थ है, जिसमें करीब करीब सभी प्रकार के विटामिन पाये जाते हैं (विटामिन के विषय में जानने के लिये पुस्तक के चौथे पृष्ठ से १०वें पृष्ठ तक देखिये) विचारणीय यह बात है कि दूध एक आदर्श भोज्य पदार्थ होते हुए भी हमारे देशवासी इससे क्यों वंचित हैं। मेरे विचार में इसके तीन मुख्य कारण हैं, (१) विदेशियों द्वारा निरन्तर अर्थ शोषण की नीति जिसके परिणाम स्वरूप देशवासी दाने दाने को मुहताज हो रहे हैं। (२) गोवंश की ओर हमारी उदासीनता यथा अप्रतिष्ठा का भाव (३) हमारे युवकों पर पाश्चात्य रहन सहन का बुरा प्रभाव, जिसके परिणाम स्वरूप दूसरे पेय पदार्थों का अधिक व्यवहार, जैसे चाय, कोको, काफी इत्यादि।

आजकल के लोग बहुधा यह कहा करते हैं, कि दुग्धाहार मांसाहार से किसी प्रकार भी अच्छा नहीं है। यदि इस विषय पर मैं लिखने बैठूँगा तो प्रस्तावना की जगह एक पुस्तक ही तैयार हो जायगी। इस विषय पर लेखक महोदय ने इस पुस्तक में अच्छा प्रकाश डाला है। मुझे केवल इतना ही कहना है कि यदि मांसाहार ही संसार में सबसे उत्तम आहार होता तो संसार के दो महान्

डिक्टेटर मुसोलिनी और हिटलर शाकाहारी न होकर मांसाहारी होते। एक बार एक भेंट में मुसोलिनी ने कहा है, कि वह पूर्ण शाकाहारी है और दूध पर उसका पूर्ण विश्वास है। उसका कहना है कि दूध ही के कारण वह अठारह अठारह, बीस बीस घंटे तक कठिन परिश्रम कर सकता है। यही हाल हिटलर का भी है। ये दोनों वे विशेष व्यक्तियाँ हैं, जिनकी ओर सारे संसार की दृष्टि लगी हुई है।

अब यह विचार करना है कि क्या किसी प्रकार से हमारा पुराना समय पुन: लौट सकता है। मेरी धारणा है कि हम लोग निम्न-लिखित बातें कार्यरूप में परिणत करें तो वह समय अवश्य आ सकता है और हमारे देश में फिर दूध की नदियाँ बह सकती हैं।

(१) गाय तथा दूसरे दुधारू पशुओं की हत्या का कानूनन निषेध। मैं समझता हूँ कि अपने अधिकार से अधिक स्थान प्रस्तावना के लिये ले रहा हूँ, इसलिये केवल दो शब्द लिखकर यहीं इसे समाप्त करूँगा।

(२) अधिक दूध के सेवन का आन्दोलन (Drink more milk comhaign)।

(३) जनता में गायों के पालन और पोषण की विशेष शिक्षा फैलाना।

(४) भारत की आर्थिक अवस्था का सुधार।

लेखक, प्रकाशक तथा इसके व्यवस्थापक मेरे बधाई के पात्र हैं। लेखक तो अपने अथक परिश्रम, संकलन और सुन्दर और शुद्ध भाषा कें लिये, प्रकाशक और व्यवस्थापक ऐसी सुन्दर तथा उपयोगी पुस्तक को प्रकाशित कर हिन्दी जनता के सन्मुख उपस्थित करने के लिये। मैं प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी से अनुरोध करूँगा कि ऐसी उपयोगी पुस्तक को अपने घर में स्थान अवश्य देवें।

वृजबिहारी लाल
बी० एस-सी० एम० बी०, बी० एस०
मेडिकल आफिसर दारागंज

समर्पण

मातृ-चरणों की स्मृति में

जिसका दुग्धामृत इस शरीर का पहले-पहल जन्मते
ही पीने को मिला था और जिसके स्नेहामृत
से यह जीवन वर्षों तक पलता रहा
उसी पुण्यमयी स्वर्गीया माता के
पवित्र चरणों की स्मृति
में यह पुष्प लेखक
द्वारा समर्पित
है।
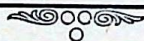
कृतज्ञता-ज्ञापन

इस पुस्तक के लिखने में जिन ग्रंथों से सहायता ली गयी है उसकी सूची कृतज्ञतापूर्वक नीचे प्रकाशित की जाती है :—

1. The Pasteurisation and Sterilisation of milk by Albert E. Bell, (London).
2. Food and Health—by R. H. A. Plimmer Bombay 2nd Edition 1926.
3. Milk and the Public Health—by William G. Sawage (London).
4. Human Food and their Nutritive Value—by Horry Synder, (New York) 1922.
5. Food, Health and Vitamin—by R. H. A. Plimmer and Vider G. Plimmer, (London 1929).
6. Vitamins published by Medical Research Council (London, 1932).
7. Encyelopedia of Health and Physical Culture, by—Bernan Macf, (New York, 1933).
8. Milk Analysis—by J. Alfred Wanklyn, (London)
9. Milk and Its Products—by Henry H. Wing (New York).
10. Your Diet in Health and Disease—by Horry Benjamin, (London 1934).
11. Animal Parasites and Human Disease—by Asal Chandler, (New York).

12. The Problem of Nutrition Volume I, Published by League of Nations.
13. Practical Dietetics with reference to Diet in Discary—by Alida Frances Pattee, New York.
14. Soya Bean—by F. S. Kale, Baroda.
15. Milk, the Most Perfect Food—by N. N. Godbole Professor of Indian Chemistry B, H, University, Benares.
16. Butter-fat, its composition, nutritive value etc.—by N. N. Godbole and Sadgopal, H. H. University, Benares.
17. Live-stock Statistics, Published by the Indian Government.
18. गोधन श्री गिरीशचंद्र चक्रवर्ती
19. Condensed Milk and Milk Powder—by Hunzikar
20. Milk and Its Products—by H. M. Wing.

इनके अतिरिक्त अनेकों हिन्दी तथा अंग्रेजी के पत्र पत्रिकाओं से भी सहायता ली गई है।

———

तापमान

इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर तापमान अर्थात् गरमी की माप का ज़िक्र आया है, उसे यहाँ अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। जिस प्रकार बोझ तौलने के लिए काँटा या तराजू होता है, लम्बाई नापने के लिए फ़ीता या गज़ होता है, उसी प्रकार गरमी नापने के लिए भी काँच का एक यंत्र होता है, जिसे थर्मामीटर कहते हैं। इस यंत्र के एक ओर पारा भरा रहता है, जो गरमी पाकर फैलता है। यंत्र में जिस चिन्ह तक यह पारा फैल जाता है, उसी डिग्री तक गरमी की माप समझी जाती है। गरमी की माप को तापमान या टेम्परेचर (temperature) भी कहते हैं।

गरमी नापने के लिए प्रायः दो प्रकार की माप प्रचलित हैं। एक को फ़ैरनहाइट (Fahrenheit) माप और दूसरे को सेंटीग्रेड (Centigrade) माप के नाम से पुकारते हैं। फ़ैरनहाइट माप का प्रचार मुख्यतः इङ्गलैंड और भारतवर्ष में है, सेन्टीग्रेड माप की चलन फ्रांस तथा अन्य देशों में है।

दोनों में अंतर इस प्रकार है:— फ़ैरनहाइट माप के अनुसार जितने तापमान में पानी बर्फ़ बन कर जमने लगता है उसे ३२ डिग्री का तापमान कहते हैं, और जितनी गरमी से वह खौल उठता है उसे २१२ डिग्री का तापमान मानते हैं। सेन्टीग्रेड माप के अनुसार पानी के जमने का तापमान ०(अर्थात् शून्य) डिग्री और पानी के ख़ौलने का तापमान १०० डिग्री समझा जाता है। अस्तु, १०० डिग्री सेंटीग्रेड (१००°—०°) के तापमान में जितनी गरमी होती है वह २१२—३२ = १८० डिग्री फ़ैरनहाइट के बराबर है।

प्रस्तुत पुस्तक में दोनों ही प्रकार के तापमानों का ज़िक्र मिलेगा। पाठकगण जब चाहें तब साधारण गणित की रीति से एक को दूसरे के रूप में बदल ले सकते हैं। इसके लिए एक सरल रीति यह भी है:—फ़ैरनहाइट तापमान में से ३२ घटा कर ५ से गुणा करने और फिर ६ से भाग देदेने पर उसका सेंटीग्रेड रूप बन जाता है। इसी प्रकार सेंटीग्रेड तापमान में ३२ जोड़ कर ६ से गुणा और ५ से भाग कर देने पर फ़ैरनहाइट तापमान निकल आता है।

पुस्तक में जहाँ फैरनहाइट तापमान से मतलब है वहाँ अंकों के आगे अंग्रेज़ी का F चिन्ह लिखा है, और जहाँ सेन्टीग्रेड तापमान से प्रयोजन है वहाँ अंकों के आगे अंग्रेज़ी का C चिन्ह लिखा है। डिग्री लिखने के लिए अंकों के ऊपर एक छोटा सा शून्य लिख दिया जाता है। उदाहरणार्थ ७५° F को पचहत्तर डिग्री फ़ैरनहाइट और ७५°C को पचहत्तर डिग्री सेन्टीग्रेड पढ़ना चाहिए। एक औसत आदमी के शरीर की गरमी का तापमान साधारणत: ६८·४°F रहता है।

विषय-सूची

दूध ही अमृत है

प्रथम अध्याय

हमारा आहार

भोजन की आवश्यकता क्यों है ?

सृष्टि के तमाम जीवित प्राणियों की तुलना हम एक जलते हुए दीपक के साथ कर सकते हैं। जिस प्रकार दीपक की ज्योति को बनाये रखने के लिए उसके अंदर तेल और बत्ती का जलते रहना आवश्यक है, उसी प्रकार प्राणियों की जीवन-ज्योति को क़ायम रखने के लिए उनके अंदर शारीरिक तत्वों का जलते रहना बहुत ज़रूरी है। कितनों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि उनका शरीर दिन-रात बराबर जलता रहता है, किन्तु बात यह बिल्कुल सही है। खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते चौबीसो घंटे हर घड़ी और हर पल हमारे अंदर शरीर के तत्व जल-जल कर नाश होते रहते हैं। जिस प्रकार तेल और बत्ती के जलने से दीपक में गरमी और प्रकाश होता है, उसी प्रकार हमारे शरीर में भी शारीरिक तत्वों के जलने से गरमी और जीवन

का प्रकाश रहता है। यह गरमी और प्रकाश क़ायम रखने के लिए हमें दीपक में जो तेल जल जाता है उसकी जगह दूसरा तेल भरना पड़ता है। इसी प्रकार हमें शरीर की गरमी और जीवन के प्रकाश को भी क़ायम रखने के लिए अपने जले हुए शारीरिक तत्वों की वारंवार पूर्ति करनी पड़ती है। यह पूर्ति केवल भोजन ही के द्वारा की जा सकती है। अतएव हमें वारंवार भोजन करने की आवश्यकता पड़ती है।

भोजन में किन-किन पदार्थों की आवश्यकता है ?

जैसा ऊपर बतला चुके हैं, भोजन के उद्देश्य दो हैं :—(१) शरीर की गरमी को बनाये रखना; (२) जो तंतु शरीर में क्षय होते रहते हैं उनका पुनः निर्माण करना। अतएव हमारे भोजन का कुछ अंश शरीर में गरमी उत्पन्न करने और स्फूर्ति लाने का काम करता है, और कुछ अंश शारीरिक तंतुओं के निर्माण में काम आता है। जो अंश शारीरिक तंतुओं का निर्माण करता है उसे प्रोटीड (proteid) कहते हैं, और जो अंश गरमी उत्पन्न करने तथा स्फूर्ति लाने के काम आता है उसे चर्बी (fat) तथा कार्बोहाइड्रेट्स (carbohydrates) कहते हैं। इनके अतिरिक्त उचित परिमाण में जल, कुछ खनिज पदार्थ (mineral salts) तथा वाइटेमिन (Vitamin) आदि प्राण-पोषक तत्वों की भी आवश्यकता भोजन में रहा करती है।

(१) **प्रोटीड** :—अंडे के भीतर की सफ़ेदी (egg-white) तथा मरे हुए जानवरों का मांस वास्तव में प्रोटीड ही है। इसमें कई प्रकार के तत्वों का सम्मिश्रण रहता है। उनमें से कुछ के नाम ये हैं:— कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, गंधक, फ़ासफ़ोरस, लोहा इत्यादि। सबसे पहिले वनस्पति-जातीय वस्तुओं में ही प्रोटीड, चर्बी,

तथा कार्बो-हाइडे्ट्स की रचना होती है। पेड़ और पौधे इनका निर्माण अपने शरीर में उपरोक्त तत्वों को पृथ्वी, जल और वायु में से लेकर किया करते हैं। पश्चात् जब मनुष्य अथवा दूसरे प्राणी इन वनस्पतियों का स्वयं आहार करते हैं, तो यही प्रोटीड, कार्बोहाइडे्ट्स तथा चर्बी उनके शरीर में पहुँच कर दूसरा रूप धारण कर लेती हैं। मूँग, उरद, मटर, अरहर, सोयाबीन आदि अनाजों में वनस्पति-जातीय प्रोटीड अत्यधिक मात्रा में पायी जाती है।

(२) चर्बी :—सरसों, अलसी, मूँगफली, तिल आदि के तेल वनस्पति जातीय चर्बी के उदाहरण हैं। घी, मक्खन, काड लिवर आयल इत्यादि जानवरों की चर्बी के उदाहरण हैं। जिस समय भोजन में चर्बी का भाग आवश्यकता से अधिक हो जाता है तो वह शरीर में एकत्र होता रहता है। इससे शरीर में स्थूलता आने लगती है। जब शरीर को भोजन नहीं मिलता तो वह पहले इसी चर्बी को पचाता है। विश्लेषण द्वारा देखने से चर्बी में कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन नामक तत्वों का सम्मिश्रण पाया जाता है।

(३) कार्बोहाइडे्ट:—चीनी और स्टार्च (अर्थात् माड़ी) इत्यादि कार्बोहाइडे्ट्स के उदाहरण हैं। यह पदार्थ आलू, चावल, मैदा, जौ इत्यादि में बहुत पाया जाता है। भोजन के समय इसकी पाचन क्रिया मुख में ही आरंभ होजाती है। मुख की लार के साथ मिल कर इसमें एक प्रकार का रासायनिक परिवर्तन होने लगता है, जिससे यह चीनी का रूप धारण कर लेता है और पेट में पहुँच कर सरलतापूर्वक पच जाता है। आवश्यकता से अधिक होने पर यह भी शरीर में चर्बी बन कर एकत्र होता रहता है। हमारे भोजन में प्रायः इसी पदार्थ की प्रधानता रहती है। इससे शरीर में गरमी और मांस-पेशियों को शक्ति मिलती है।

(४) खनिज पदार्थ :—ये कई प्रकार के क्षार हैं। हड्डियों की रचना में प्रायः दो तिहाई भाग इन्हीं क्षारों का है, जिनमें से चूने की क्षार (salt of lime) सर्वप्रधान है। शेष एक तिहाई भाग प्रोटीड का है। ये क्षार हमें नमक तथा साग तरकारियों से बहुत अधिक मिलते हैं।

(५) जलः—बहुत सा जल तो हमारे भोजन में ही मिला रहता है। विशेषकर दूध और ताज़े फल में इसकी मात्रा बहुत अधिक रहती है। इसके अतिरिक्त इच्छानुसार अलग से भी जल पीना पड़ता है। शरीर का प्रायः दो तिहाई भाग जल ही से बना हुआ है। यह जल दिन रात पसीना, पेशाब, एवं श्वास के साथ शरीर से बराबर निकलता रहता है। अतएव उसकी पूर्ति के लिए शरीर को जल की आवश्यकता पड़ती है। डाक्टरों की राय है कि एक दिन-रात में शरीर के भीतर कम से कम ३ या ४ सेर पानी अवश्य पहुँचना चाहिए। तभी हमारे भीतर की भली भाँति सफ़ाई हो सकती है। शाकाहारियों की अपेक्षा मांसाहारियों को जल अधिक पीना चाहिए, क्योंकि उनके अंदर सफ़ाई की आवश्यकता अधिक रहती है।

(६) वाइटेमिनः—हिंदी में इसे प्राण-पोषक तत्व कह सकते हैं। इसके बिना शरीर की वृद्धि रुक जाती है और उसमें भाँति-भाँति के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। भोजन में इसकी अनिवार्यता अभी योरोपीय महा-युद्ध के समय से ही मालूम हुई है। इसके पहले इस विषय में वैज्ञानिकों को यद्यपि संदेह कई बार और कितने ही अवसरों पर उठे थे, किंतु कुछ विशेष रूप से पता न था। उस समय तक शारीरिक पोषण के लिए केवल प्रोटीड, कार्बोहाइड्रेट्स, चर्बी और खनिज पदार्थ ही आवश्यक समझे जाते थे। अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं मानी जाती थी। अस्तु, लगभग २५ वर्ष हुए कुछ वैज्ञानिकों ने इन चारों वस्तुओं को

निश्चित मात्रा में अलग से मिला कर एक कृत्रिम भोजन तैयार किया और उसे चूहे, कबूतर आदि कुछ जानवरों को खिला कर देखा। शीघ्र ही ये जानवर बीमार हो गए और मरने लगे। जब-जब उन्हें स्वाभाविक भोजन दे दिया जाता था वे स्वस्थ हो जाते थे, किन्तु कृत्रिम भोजन पर रखने से वे सदैव मरने लगते थे। अतएव सिद्ध हुआ कि स्वाभाविक भोजन में उपरोक्त चारों पदार्थों के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसी वस्तु अथवा वस्तुएँ मौजूद हैं जो जीवधारियों के शरीर और स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। लंदन के डाक्टर कैसिमर फंक (Dr. Casimer Funk) ने इस वस्तु की उपस्थिति गेहूँ आदि कई अनाजों के चोकर में तथा साग भाजी में प्रयोग द्वारा सिद्ध की और उसका नाम पहले पहल वाइटेमिन (Vitamin) रक्खा। इसी के बाद योरोप का युद्ध आरम्भ हो गया। पश्चात् डाक्टर ई० वी० मकोलम (Dr E. V. McCollum) के प्रयोगों से मालूम हुआ कि जानवरों की चर्बी (lard) और वानस्पतिक तैलों की अपेक्षा मक्खन और काड लिवर आयल से शरीर की वृद्धि अधिक शीघ्र होती है। इसका नाम मकोलम महाशय ने 'वाइटेमिन ए' (Fat-Soluble A or Vitamin A) रक्खा। यह शक्ति अनाजो के वाइटेमिन से भिन्न थी, कारण कि अनाज वाले वाइटेमिन के न मिलने से शरीर में एक विशेष प्रकार का रोग हो जाता है, जिसे 'बेरी-बेरी' (Beri-Beri) के नाम से पुकारते हैं। किन्तु 'वाइटेमिन ए' की अनुपस्थिति में शरीर की बाढ़ रुक जाती है और आंखों का रोग (Xerophthalmia) हो जाता है। अतएव अनाज वाले वाइटेमिन को 'वाइटेमिन बी' के नाम से पुकारने लगे।

इस प्रकार वाइटेमिन का नाम ए, बी, आदि अंग्रेजी अक्षरों के नाम पर रखने की प्रथा पहले-पहल बीजगणित से ली गयी थी।

बीजगणित में जो परिमाण अथवा संख्याएँ अज्ञात होती हैं उनका नाम सदा एक्स, वाई, जे.ड (X, Y, Z) आदि अक्षरों के आधार पर रक्खा जाता है। ये वाइटेमिन भी उस समय वैज्ञानिकों के लिए प्रायः अज्ञात वस्तुएँ थीं। अतएव इन्हें भी उसी प्रकार ए, बी, सी, डी, आदि अक्षरों के आधार पर पुकारने लगे। आगे चल कर यही उनका नाम पड़ गया।

कुछ समय पश्चात् एक तीसरे प्रकार के वाइटेमिन का पता लगा, जिसका नाम **वाइटेमिन सी** (Vitamin C) रक्खा गया। यह नींबू, और नारंगी जाति के फलों (Citrous Fruits) में विशेषता के साथ पाया जाता है। इसकी अनुपस्थिति से शरीर में स्कर्वी (Scurvy) नाम का रोग हो जाता है।

योरोपीय युद्ध के समाप्त होते-होते सारे संसार का ध्यान वाइटेमिन के प्रश्न की ओर खिंच गया, जिससे प्रायः हरएक देश में इसी सम्बन्ध के प्रयोग होने लग गए। नये-नये वाइटेमिन की खोज में, तथा किस-किस वस्तु में कौन-कौन से वाइटेमिन मौजूद हैं इसकी जाँच के लिए, सहस्रों प्रकार के प्रयोग संसार भर में किये जाने लगे। उपरोक्त डाक्टर मकोलम ने मक्खन और काडलिवर तेल में 'वाइटेमिन ए' के अतिरिक्त एक और नये वाइटेमिन का पता लगाया, जिसका नाम **वाइटेमिन डी** रक्खा गया। यह वाइटेमिन बच्चों के अस्थि-निर्म्माण में सहायता देता है और उनकी हड्डियों को सुदृढ़ करता है। इसकी अनुपस्थिति में बच्चों को अस्थि-विकृति (Rickets) का रोग होजाता है, जिससे उनकी हड्डियाँ कोमल होकर टेढी पड़ जाती है।

सन् १९२२ में एवान्स और बिशप (Evans and Bishop) नामके विद्वानों ने एक पाँचवें वाइटेमिन का पता गेहूँ, हरी पत्तियों, जानवरों की चर्बी तथा बिनौले इत्यादि कुछ वनस्पति जातीय

तेलों में मालूम किया। **इसका नाम 'वाटेमिन ई'** (Vitamin E) रक्खा गया। इसके द्वारा प्राणियों को सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति मिलती है। प्राय: चूहों पर प्रयोग करके देखा गया है कि वे वाइटेमिन ई की अनुपस्थिति में भले-चंगे तो रहते हैं किन्तु बच्चे नहीं पैदा करतें। ज्योंही उन्हें थोड़ी सी सूखी पत्ती, गेहूँ या तेल दिया जाता है त्योंही वे बच्चे पैदा करने लगते हैं। इसी समय कुछ वैज्ञानिकों ने गेहूँ इत्यादि कई अनाजों में एक और नये वाइटेमिन का संदेह किया था, जिसके द्वारा उनका विश्वास था कि मादा जानवरों में दूध देने की शक्ति बढ़ती है। इसका नाम वाइटेमिन एफ़ (Vitamin F) रक्खा गया, किन्तु बाद को मालूम हुआ कि वास्तव में वह कोई नया वाइटेमिन नहीं है बल्कि वाइटेमिन 'बी' ही है, जो प्रसूता में दूध उत्पन्न करने के लिए अधिक मात्रा में आवश्यक हुआ करता है। अतएव वाइटेमिन 'एफ़' का नाम निकाल दिया गया।

'वाइटेमिन जी' (Vitamin G) का पता सब से अंत में लगभग दस बारह वर्ष हुए मालूम हुआ था। वाइटेमिन जी मुख्यतः मांस, मछली तथा अंडों की सफ़ेदी में पाया जाता है। इनके अतिरिक्त दूध, गेहूँ, और टमाटर में भी इसकी उपस्थिति थोड़ी मात्रा में मिलती है। इस वाइटेमिन के न मिलने से शरीर में एक विशेष प्रकार का रोग हो जाता है जिसे डाक्टर लोग 'पेलग्रा' (Pellagra) की बीमारी कहते हैं। इस रोग में प्रायः पाचनक्रिया बिगड़ जाती है, शरीर पर दाने उभड़ आते हैं, और मानसिक विकार भी पैदा हो जाता है जो रोगी को बहुधा पागल तक बना देता है। गत योरोपीय महायुद्ध के समय मिश्रदेश में युद्ध के क़ैदियों में यही बीमारी फैली थी। सन् १९२७ तक अमेरिका में यही रोग मिसीसिपी नदी के आस-पास की बस्ती का सफ़ाया कर रहा था। अंत में डाक्टर जे० गोल्डबर्गर (Dr. J.

Goldberger) के अन्वेषणों से 'वाइटेमिन जी' का पता लगा, जिससे वहाँ वालों के भोजन में सुधार किया गया और यह रोग वहाँ से सदा के लिए जाता रहा। मांस, दूध अथवा टमाटर का रस इस रोग की सर्वोत्तम औषधि है।

संक्षेप से सब प्रकार के वाइटेमिन के विषय में निम्न-लिखित बातें सदैव याद रखने की हैं:—

(१) प्रायः एक ही खाद्य वस्तु में सब प्रकार के वाइटेमिन नहीं मिला करते। किसी वस्तु में वाइटेमिन ए या डी मिलता है तो किसी में वाइटेमिन बी, सी, ई अथवा जी मिलता है। केवल दूध ही एक ऐसी वस्तु है जिसमें प्रायः सब प्रकार के वाइटेमिन पाये जाते हैं।

(२) शरीर के लिए वाइटेमिन की बहुत थोड़ी मात्रा आवश्यक हुआ करती है, किन्तु आवश्यकता सभी प्रकार के वाइटेमिन की रहती है।

(३) वाइटेमिन की उपस्थिति अधिकतर ताज़ी और कच्ची वस्तुओं में ही मिला करती है। वस्तुओं को सुखाने, उबालने, गरम करने, रख छोड़ने अथवा मसालों का मेल देने से बहुत से वाइटेमिन नष्ट हो जाते हैं। नीचे के ब्योरे से मालूम होगा कि किस प्रकार के वाइटेमिन किस रीति से नष्ट होते हैं :—

रीतियाँ	वाइटेमिन ए	वाइटेमिन बी	वाइटेमिन सी
(१) सुखाना—			
(क) हवा में सुखाना	नष्ट होता है	नहीं नष्ट होता	नष्ट होता है।
(ख) वैकुअम में सुखाना (Vacuum)	नहीं नष्ट होता	,, ,, ,,	बहुधा नहीं नष्ट होता
(२) गरम करना:—			
(क) हवा में खुला हुआ	धीरे धीरे नष्ट होता है	नहीं नष्ट होता	धीरे धीरे नष्ट होता है
(ख) वैकुअम में (in a Vacuum)	नहीं नष्ट होता	,, ,, ,,	अधिकांश नष्ट हो जाता है
(ग) दबाव के साथ (sterilisation)	,, ,, ,,	नष्ट होता है	नष्ट होता है
(३) रखाऊ होने से	धीरे धीरे नष्ट होता है	नष्ट होता है	नष्ट होता है !
(४) नमक, सोडा आदि क्षार का मेल देना	नहीं नष्ट होता	नष्ट होता है	तेज़ी से नष्ट होता है
(५) मसालों से सुरक्षित करना			
(क) डब्बे का मांस (tinned meat)	नहीं नष्ट होता	नष्ट होता है	नष्ट होता है
(ख) फल और साग	नहीं नष्ट होता	कम हो जाता है	कभी कभी नहीं नष्ट होता
(ग) अंडे	नहीं नष्ट होता	नहीं नष्ट होता	...
(घ) मांस या मक्खन ठंड में रखा हुआ	नहीं नष्ट होता	नहीं नष्ट होता	...
(ङ) फल ठंड में रखा हुआ	नहीं नष्ट होता	नहीं नष्ट होता	नष्ट होता है
(६) अनाज को छीलकर मिलों में पीसना	निकल जाता है	निकल जाता है	...

नोट—वाइटेमिन डी उपरोक्त किसी भी रीति से नष्ट नहीं होता।

प्राचीन काल में मनुष्य का भोजन अधिक सादा और स्वाभाविक ढंग का हुआ करता था। अतएव मालूम न रहने पर भी उस समय उनके शरीर को सब प्रकार के वाइटेमिन मिला करते थे। किंतु जब से हमारी ख़ूराक में कृत्रिमता की वृद्धि होने लगी तभी से उसमें स्वाभाविक वाइटेमिनों का भी अभाव होने लगा, और तभी से हममें नये-नये ढंग की बीमारियाँ भी घर करने लगीं। पहले जब हम लोग हाथ का पिसा आटा खाते थे तो वाइटेमिन बी (जो अनाजों के ऊपरी पर्त में रहता है) हमें पूर्णांश में प्राप्त होता था। किंतु जब से मिलें चलीं और उनमें छिलका उतार कर अनाज पिसने लगा, तब से वाइटेमिन बी का अभाव हो गया। इसी प्रकार दूध, घी, फल, शाक इत्यादि का भी हाल है। जिस समय ये वस्तुएँ हमें स्वाभाविक अवस्था में मिलती थीं, उनके सम्पूर्ण वाइटेमिन हमें प्राप्त होते थे। किंतु जब से डब्बे का जमा हुआ दूध, विलायती घी, सालों के रक्खे हुए सुरक्षित (preserved) फल इत्यादि हमारी ख़ूराक में सम्मिलित हुए, तबसे हमें प्रायः सब प्रकार के वाइटेमिनों का अकाल पड़ गया। अस्तु, यदि अधिक झंझट में न पड़कर अब भी हम केवल अपने भोजन को पहले की तरह सादा और स्वाभाविक बनाये रक्खें, तो फिर वाइटेमिन के विषय में चिंता करने की आवश्यकता नहीं।

भोजन की आवश्यकता कितनी है ?

जब हम कोई काम करते हैं तो हमारे शरीर की कुछ शक्ति व्यय होकर उसी कार्य के रूप में बदल जाती है। जिस समय हम कोई काम नहीं भी करते उस समय भी हमारे शरीर के भीतरी अंग अपना काम बराबर किया करते हैं। अतएव ऐसी अवस्था में भी

हममें शक्ति का उपरोक्त परिवर्तन बराबर होता रहता है। यह परिवर्तन बड़े शरीर की अपेक्षा छोटे शरीरवालों में अधिक शीघ्रता के साथ होता है और गोद के बच्चों में तो इसकी गति सब से तीव्र होती है। साथ ही स्थानीय जल-वायु, गरमी-सरदी तथा रहन-सहन के ढंग का भी प्रभाव इसकी गति पर बहुत अधिक पड़ा करता है। अस्तु, किस मनुष्य को कितने भोजन की आवश्यकता है इसे जानने के लिए देखना होगा कि उसके शरीर में शक्ति का व्यय किस हिसाब से होता है, अर्थात् इसके लिए मालूम करना होगा कि:—(१) वह किस प्रकार की जलवायु में रहता है, (२) वह किस प्रकार का काम करता है, और (३) उसका डील-डौल कैसा है। ठंडे जलवायु में हमारे शरीर की गरमी अधिक शीघ्रता के साथ क्षय होती है, अतएव उसकी पूर्ति के लिए अधिक भोजन की आवश्यकता पड़ती है। गरम देशों में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रायः हर प्रकार के जलवायु में मनुष्य के शरीर की गरमी एक ही सी रहा करती है। अर्थात् उसका तापमान ९८·४°F से कम या अधिक नहीं होता। अतएव शरीर में उपरोक्त तापमान की गरमी बनाये रखने के लिए ठंडे देशों में भोजन की आवश्यकता अधिक पड़ती है। उदाहरणार्थ योरोप के ठंडे जलवायु में रहने वालों के लिए दिन में प्रायः चार या पाँच बार खाने की आवश्यकता पड़ती है; किन्तु हमारे देश में दो बार से अधिक भोजन की आवश्यकता नहीं होती। यही बात परिश्रम के विषय में भी कही जा सकती है। अधिक परिश्रम से शरीर की शक्तियों का व्यय अधिक परिमाण में होता है। अतएव उसकी पूर्ति के लिए अधिक भोजन की आवश्यकता पड़ती है। जिन लोगों को कुछ काम नहीं करना पड़ता अथवा जो केवल बैठे-बैठे काम करते हैं, जैसे दूकानदार, लेखक, अध्यापक इत्यादि, उनकी अपेक्षा दिनभर फावड़ा चलाने

वाले मज़दूरों को भोजन की आवश्यकता अधिक रहती है। डील-डौल के विषय में सिद्धांत यह है कि जो शरीर जितना छोटा होगा उतनी तीव्र गति के साथ उसकी गरमी ख़र्च होती रहेगी और इसीलिए उतनी ही जल्दी-जल्दी उसे भोजन की भी आवश्यकता पड़ेगी। इसी सिद्धांत से बच्चों को बड़ों की अपेक्षा बारंबार भोजन की आवश्यकता पड़ती है।

वैज्ञानिकों ने शरीर की तापशक्ति (heat energy) का ठीक-ठीक हिसाब मालूम करने के लिए एक विशेष प्रकार का यंत्र निर्माण किया है, जिसे कैलोरीमीटर (Calorimeter) कहते हैं। इस यंत्र के द्वारा जो शक्ति हमें भोजन से प्राप्त होती है तथा जो शक्ति दिन रात शरीर से क्षय होती रहती है उसका पूरा-पूरा हिसाब मालूम किया जा सकता है। जिस प्रकार कपड़े की माप गज़ों में और चाँदी-सोने की माप तोला-माशा-रत्तियों में की जाती है, उसी प्रकार तापशक्ति की माप कैलोरियों की संख्या में होती है, एक कैलोरी तापशक्ति का अर्थ उतनी तापशक्ति से है जो लगभग सवा सेर (one litre) पानी की गरमी को १°c अधिक बढ़ा सके। इसी को कार्य्य के रूप में प्रकट करने के लिए यों कह सकते हैं कि जितनी तापशक्ति से ११½ मन (425 Kg.) के बोझ को ३ फीट ३ इंच ऊँचा उठा लेने के बराबर मेहनत हो सकती है उसे एक कैलोरी कहेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति को जितना काम उसके शरीर द्वारा होता है उसकी प्रायः चौगुनी या पँचगुनी तापशक्ति आवश्यक हुआ करती है। इसे समझने के लिए हम घरेलू चूल्हे का उदाहरण ले सकते हैं। चूल्हे की जितनी तापशक्ति या आँच रोटी पकाने के काम में आया करती है उससे कहीं अधिक कोयला चूल्हे के अंदर जलाना पड़ता है। इसी प्रकार शरीर में भी जितना काम होता है उसकी अपेक्षा कई

गुणा शक्ति ख़र्च होजाती है। अतएव इस सिद्धांत के अनुसार जितनी तापशक्ति प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में स्थानीय जलवायु, रहन-सहन, पहनाव-ओढ़ाव, खेल-कूद एवं शारीरिक परिश्रम द्वारा शक्ति क्षय के कारण आवश्यक हुआ करती है, उसका हिसाब योरोपीय और अमेरिकन विद्वानों ने लगा कर प्रकाशित किया है। उनके कथनानुसार योरोप और अमेरिका में एक औसत दर्जे के मनुष्य के लिए दिन-रात में लगभग २००० कैलोरी से ३००० कैलोरी तक की तापशक्ति आवश्यक हुआ करती है। इस हिसाब से भोजन में प्रोटीन, चर्बी और कार्बोहाइड्रेट की मात्रा निम्नलिखित रूप से होनी चाहिए:—

प्रोटीन	चर्बी	कार्बोहाइड्रेट
३½ औंस* से ४½ औंस तक या १०० से १२० ग्राम	२½ से ६½ औंस तक या ७० से १०० ग्राम	१४ से १८ औंस तक ४०० से ५५० ग्राम

प्रायः १ ग्राम (अर्थात् लगभग ‐)॥ भर) प्रोटीन से ४·१ कैलोरी शक्ति शरीर को प्राप्त होती है, और इतनी ही तापशक्ति १ ग्राम कार्बोहाइड्रेट्स से भी प्राप्त होती है। किंतु १ ग्राम चर्बी से ६·३ अर्थात् लगभग उसकी दूनी तापशक्ति मिलती है। जर्मनी के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने अपने देश के भिन्न-भिन्न श्रेणी के मनुष्यों के लिए भोजन में इन तीनों पदार्थों की मात्राएँ निम्नलिखित रूप से निश्चित की हैं:—

*१ औंस = २८·६ ग्राम = लगभग आधी छँटाक

काम	कैलोरी	प्रोटीन ग्राम*	चर्बी ग्राम*	कार्बोहाइडे्ट्स ग्राम*
१—कठिन परिश्रमी हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति	४८००	१३३	१००-१५०	५००-५५०
२—साधारण परिश्रमी हृष्ट-पुष्ट ,,	३०००	१२२	७५-१००	४००-५००
३—दफ़्तर इत्यादि में काम करनेवाला	२४००	१०५	५०	४००-५००
४—कठिन परिश्रमी दुर्बल मनुष्य	२४००	७५	६०	४००-५००
५—साधारण परिश्रमी दुर्बल मनुष्य	१८००	७५	४०	३००-४००
६—विश्राम लेनेवाली वृद्ध स्त्रियाँ	१६००	६०	३०	२५०

* एक ग्राम तौल में लगभग डेढ़ आने भर होता है।

जैसा कि पहले कह चुके हैं उपरोक्त मात्राएँ मुख्यतः योरोपीय परिस्थिति को लक्ष्य में रहकर निश्चित की गयी हैं। भारतीय दृष्टि से, जहाँ तक हमें मालूम हो सका है, ऐसे कोई आँकड़े अभी तक नहीं तैयार हुए हैं। तो भी इतना तो साधारण बुद्धि से कहा जा सकता है कि यहाँ की जलवायु, रहन-सहन, स्वास्थ्य एवं शारीरिक-गठन को देखते हुए भारतीयों के लिए उपरोक्त मात्राओं में बहुत कुछ कमी करनी पड़ेगी। साथ ही इस देश के भिन्न भिन्न स्थानों के जलवायु, रहन-सहन और पहनाव-ओढ़ाव में इतनी अधिक भिन्नता है कि कोई एक प्रकार का आँकड़ा समस्त देश के लिए तैयार नहीं किया जा सकता।

साधारण मनुष्य के नित्य-प्रति के जीवन में इस प्रकार के आँकड़ों की कुछ विशेष उपयोगिता भी नहीं है। कोई भी मनुष्य इस प्रकार अपने भोजन को रोज़ तौल-नाप कर खाना न पसंद करेगा और न यह सदैव उसके लिए संभव ही है। इस प्रकार के आँकड़े मुख्यतः उन स्थानों में उपयोगी होते हैं जहाँ बहुत से मनुष्यों को सामूहिक रूप से खिलाने-पिलाने की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणार्थ युद्ध के सैनिकों के लिए, बोर्डिंग हाउस के छात्रों के लिए, अनाथालयों में, गुरुकुलों में और आश्रमों के लिए इन आँकड़ों की उपयोगिता विशेष रूप से सिद्ध होती है। साधारण व्यक्ति के लिए तो स्वाभाविक भूख ही उसके भोजन की सब से बढ़िया तौल-नाप है। कहावत भी है:--

'भूख भर खाय, नींद भर सोवै।
ताको रोग कबौं ना होवै॥'

जिस मनुष्य को जितने भोजन की आवश्यकता हुआ करती है उसी हिसाब से प्रायः उसे भूख भी लगा करती है। ठंडे देशों में गरम

देशों की अपेक्षा अधिक भोजन की आवश्यकता रहती है, अतएव वहाँ भूख भी अधिक लगती है। इसी प्रकार परिश्रमी लोगों को बैठलुओं की अपेक्षा अधिक भोजन की आवश्यकता पड़ती है, अतएव उन्हें भी अधिक भूख लगती है। बच्चों को भी बड़ों की अपेक्षा अधिक बार भोजन की आवश्यकता पड़ती है, अतएव उन्हें भूख जल्दी-जल्दी लगती है। इस प्रकार साधारण दशा में भोजन की मात्रा निश्चित करने के लिए हमारी भूख ही सब से बढ़िया और स्वाभाविक पथ-प्रदर्शिका है और यदि खानेपीने में इसकी आज्ञा का पालन मनुष्य करता रहे तो शरीर की बहुत सी व्याधियों से छुटकारा मिल सकता है। किन्तु कुछ लोग इच्छा या रुचि को ही भूख समझ लिया करते हैं और इसलिए हानि उठाते हैं। इच्छा या रुचि वास्तव में तबियत की माँग है, शरीर की माँग नहीं। शरीर की जो माँग होती है उसी को भूख कहते हैं। बढ़िया और स्वादिष्ट भोजन को देख कर भूख न रहते हुए भी बहुधा खाने की इच्छा हो जाती है ऐसी इच्छा को दबा कर सदैव भूख को ही प्रधानता देना हमारा कर्तव्य है।

आदर्श भोजन क्या है ?

जैसा कि पहले कह आये हैं, शरीर के स्वास्थ्य और पोषण के लिए भोजन सम्बन्धी छः प्रकार के पदार्थों की आवश्यकता होती है:—(१) प्रोटीन; (२) चर्बी; (३) कार्बोहाइड्रेट्स; (४) खनिज पदार्थ; (५) वाइटेमिन; तथा (६) जल। इनमें से जल को छोड़ कर शेष पाँचों पदार्थों की मात्रा प्रत्येक साधारण मनुष्य की खूराक में इस प्रकार होनी चाहिए:—

कार्बोहाइडे्ट्स $\frac{2}{3}$ या दो तिहाई भाग।
चर्बी $\frac{1}{6}$ या छठवाँ भाग
प्रोटीन + थोड़ा खनिज पदार्थ } $\frac{1}{6}$ या छठवाँ भाग
वाइटेमिन ए, बी, सी, डी, और, जी, } न्यूनांश में

बच्चों और बालकों का शरीर बढ़ता रहता है, अतएव उनके शरीर-निर्माण के लिए प्रोटीन की आवश्यकता अधिक हुआ करती है। इसलिए उनकी ख़ूराक में कार्बोहाइडे्ट्स की मात्रा घटा कर प्रोटीन कुछ बढ़ा देना चाहिए। इसके विपरीत वृद्धों के लिए प्रोटीन की मात्रा कम कर के कार्बोहाइडे्ट्स की मात्रा अधिक कर देनी चाहिए। वाइटेमिन में घट-बढ़ करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, दूध पिलाने वाली माता के लिए अवश्य वाइटेमिन बी की मात्रा साधारण मात्रा की अपेक्षा चौगुनी या पँचगुनी होनी चाहिए, क्योंकि दूध की वृद्धि सदैव इसी पर निर्भर है।

इस प्रकार भोजन सम्बन्धी आवश्यकताओं को समझ लेने के पश्चात् अब प्रश्न उठता है कि संसार भर में जो भाँति-भाँति के भोजन मनुष्यों के व्यवहार में आ रहे हैं उनमें से किस प्रकार का भोजन हमारे लिए आदर्श कहा जा सकता है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें इस पर दो भिन्न-भिन्न दृष्टियों से विचार करना पड़ेगा:—(१) शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से; (२) नैतिक दृष्टि से।

शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से

संसार में जितने प्रकार के भोजन मनुष्य-समाज में प्रचलित हैं वे प्रायः दो विभागों में रक्खे जाते हैं:—(१) मांसाहार; और (२) शाका-

हार। इन दोनों में से कौन सा श्रेष्ठ है इस विषय में बड़ा मतभेद है, और यह मतभेद बहुत दिनों से चला आ रहा है। सबसे पहले यह मतभेद भारतवर्ष में पैदा हुआ था, जब भगवान बुद्ध ने अपनी आवाज़ जीव-हिंसा के विरुद्ध ऊँची की थी। किंतु वास्तव में यह एक धार्मिक अथवा नैतिक विवाद था। अतएव इसकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे। यहाँ हमें इस प्रश्न को केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से देखना है। अतएव स्वास्थ्य की दृष्टि से देखने के लिए हमें डाक्टरों एवं स्वास्थ्य-विद्या-विशारदों का आश्रय लेना होगा। पाश्चात्य देश के डाक्टरों ने इस विषय की बहुत अधिक छानबीन की है। अतएव उनसे हमें इस प्रश्न के हल करने में बहुत अधिक सहायता मिल सकती है।

योरोप और अमेरिका में अधिकतर लोग मांसाहारी हैं। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि इधर कुछ दिनों से वहाँ शाकाहारियों की संख्या बड़ी शीघ्रता के साथ बढ़ रही है, किंतु फिर भी प्रधानता अभी वहाँ मांसाहारियों ही की अधिक है। इतना ही नहीं, बल्कि बहुत से लोग अभी वहाँ ऐसे भी है जो मांसाहार को शरीर के लिए अत्यंत आवश्यक एवं उपयोगी मानते हैं। अस्तु, हमें अपना मत स्थिर करने के लिए दोनों ही पक्ष की बातों को सुनना, समझना और उन पर विचार करना होगा। नीचे हम मांसाहार के पक्ष में जो दलीलें रक्खी जाती हैं उन्हें संक्षेप से बतलाने का प्रयत्न करते हैं।

(१) सबसे बड़ी दलील जो मांस खाने के पक्ष में दी जाती है वह है उसके प्रोटीन की उत्तमता। अरहर, मूँग, उरद, मटर आदि वनस्पति जाति की वस्तुओं में जो प्रोटीन मिलती है वह मांस की प्रोटीन से घटिया जाति की होती है और चारों ओर से सेल्यूलोज (cellulose) की दीवार से ढँकी रहने के कारण कुछ कठिनाई से भी पचती है। मांस की प्रोटीन ठीक उसी जाति की होती है जैसी हमारे शरीर के मांस

में मिलती है। अतएव शरीर उसे बिना प्रयास ही ग्रहण कर लेता है और वह शीघ्र पच कर हमारे अंगों में मिल जाती है।

(२) दूसरी दलील जो इस पक्ष के लिए रक्खी जाती है वह है मांस में निरर्थक वस्तुओं की कमी। कहा जाता है कि मांस में अधिकतर भाग प्रोटीन का होता है। फ़ालतू चीज़ें अपेक्षाकृत उसमें बहुत कम पाई जाती हैं। अतएव केवल थोड़ा ही सा मांस खा लेने से शरीर को काफ़ी मात्रा में प्रोटीन मिल जाती है। किंतु उतनी ही प्रोटीन को वनस्पति जातीय वस्तुओं से प्राप्त करने के लिए हमें बहुत अधिक अनाज या दाल खाने की आवश्यकता पड़ती है, कारण कि अनाज या दालों में बहुत सा अंश केवल निरर्थक सेल्यूलोज़ का रहता है, जो शरीर के किसी काम में नहीं आता। अतएव उसे बोझ की तरह पेट में नित्य लाद रखने और फिर बाहर निकाल देने में शरीर को व्यर्थ अपनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है।

इसमें संदेह नहीं कि उपरोक्त दोनों ही दलीलें मांस के पक्ष में बिल्कुल सत्य और सही हैं, और यदि इसमें दोष भी उतने ही अधिक अथवा भयंकर न होते जिनकी चर्चा हम आगे करने जा रहे हैं, तो कम से कम स्वास्थ्य की दृष्टि से तो हमें यह कहना ही पड़ता कि मांस शरीर के लिए एक उपयोगी वस्तु है। किंतु योरोप और अमेरिका के कितने ही बड़े बड़े डाक्टर इस बात में एकमत हैं कि मांसाहार के कारण शरीर में कुछ ऐसे भयंकर रोगों को जन्म मिलता है जो प्रायः शाकाहारियों में नहीं पाये जाते, और यदि कहीं पाये भी जाते हैं तो उतने उग्र रूप में नहीं जितने वे मांसाहारियों में पाते जाते हैं। उदाहरणार्थ वात, गठिया, क्षय, एपेन्डिक्स-प्रदाह (Appendicitis), कैन्सर (Cancer, एक प्रकार का ज़हरीला फोड़ा) इत्यादि रोग अधिकांश अवस्था में केवल मांस खाने से ही उत्पन्न होते हैं। बात यह है कि

मांस एक ऐसी वस्तु है जो बहुत शीघ्र सड़ जाती है और इसके सड़ने से भाँति-भाँति के विकार पैदा होते हैं। पाकाशय में भी इसके द्वारा कितने ही प्रकार के विषैले बीजांणुओं की वृद्धि होने लगती है जो रुधिर में पहुँच कर तरह-तरह की बीमारियों को जन्म देती है। अमेरिका के प्रसिद्ध अनुभवी डाक्टर केलाग (Dr. Kellogg) इस विषय में अपने पचासों वर्ष के अनुभव से लिखते हैं :—

"Any reader who will make a careful study of the relation of meat-eating to intestinal Toxemia, or auto-intoxication, and will make even a brief trial of a well-balanced and meatless bill of fare, will certainly be convinced of the immense advantages of the fleshless regimen, and in fact of the impossibility of ridding one's self of the dangerous bacteria which infect the colon of every meat-eater and which give rise to colitis, appendicitis, and many other disorders (including headache, blood pressure etc.)........."

अर्थात् "कोई भी पाठक जो मांसाहार के द्वारा आँतों में होने वाले विषसंचय का अध्ययन ध्यानपूर्वक करेगा और फिर थोड़े समय के लिए सुनियमित किन्तु मांसहीन भोजन को भी अज़मायेगा उसे मांसहीन भोजन की महोपयोगिता के विषय में तनिक भी संदेह न रह जायेगा। साथ ही उसे यह भी विदित हो जायगा कि मांसाहारियों के मलाशय में जो भयंकर जीवाणु भरे रहते हैं और जो एपेन्डिसाइटिस, कोलाइटिस आदि कितने ही रोगों को (जिनमें शिरदर्द, रक्तावरोध इत्यादि भी सम्मिलित हैं) जन्म दिया करते हैं

उनसे छुटकारा पाना कितना असंभव काम है।" डाक्टर गिब्सन वार्ड (Dr. Gibsen Ward) लिखते हैं कि:—

"Acid blood is the origin and sustaining cause of all rheumatic affections. Go to the shambles and apply a bit of the test paper to the juice of the flesh there and you find it gives an acid reaction. People who are content with the herb-bearing seeds and the tree-producing fruits for their diet cannot have rheumatic pains or fevers or their joints cemented together in rheumatic arthritis. This acid blood is fruitful of other diseases e.g. leprosy and scurvy etc."

अर्थात् "सब प्रकार के वात-रोग की उत्पत्ति और स्थिति का एकमात्र कारण रक्त की अम्लता है। किसी क़साईख़ाने में जाओ और वहाँ मांस का थोड़ा सा रस लेकर एक टुकड़ा लिटमस काग़ज़ पर लगा कर देखो। तुम्हें उसकी प्रतिक्रिया सदैव अम्लकारक ही मिलेगी। जो लोग केवल पौधों पर उत्पन्न होने वाले अनाज और पेड़ों पर पैदा होने वाले फल खा कर संतुष्ट रहते हैं उन्हें वातपीड़ा अथवा वातज्वर नहीं सताता और न उनके हड्डियों के जोड़ में वात जनित जकड़न या तनाव ही पैदा होता है। वास्तव में रुधिर का यह अम्लत्व अन्य कई रोगों का भी कारण होता है जैसे कुष्ठ, स्कर्वी, इत्यादि।"

एक तीसरे डा० एलेक्ज़ेन्डर हेग (Alexander Haig, M.A., M. D. F. R. C. P.) ने अपने 'Uric Acid as a Factor in the Causation of Diseases' नामक ग्रन्थ में बतलाया है

मांस एक ऐसी वस्तु है जो बहुत शीघ्र सड़ जाती है और इसके सड़ने से भाँति-भाँति के विकार पैदा होते हैं। पाकाशय में भी इसके द्वारा कितने ही प्रकार के विषैले वीजाणुओं की वृद्धि होने लगती है जो रुधिर में पहुँच कर तरह-तरह की बीमारियों को जन्म देती है। अमेरिका के प्रसिद्ध अनुभवी डाक्टर केलाग (Dr. Kellogg) इस विषय में अपने पचासों वर्ष के अनुभव से लिखते हैं :—

"Any reader who will make a careful study of the relation of meat-eating to intestinal Toxemia, or auto-intoxication, and will make even a brief trial of a well-balanced and meatless bill of fare, will certainly be convinced of the immense advantages of the fleshless regimen, and in fact of the impossibility of ridding one's self of the dangerous bacteria which infect the colon of every meat-eater and which give rise to colitis, appendicitis, and many other disorders (including headache, blood pressure etc.)........."

अर्थात् "कोई भी पाठक जो मांसाहार के द्वारा आँतों में होने वाले विषसंचय का अध्ययन ध्यानपूर्वक करेगा और फिर थोड़े समय के लिए सुनियमित किन्तु मांसहीन भोजन को भी अज़मायेगा उसे मांसहीन भोजन की महोपयोगिता के विषय में तनिक भी संदेह न रह जायेगा। साथ ही उसे यह भी विदित हो जायगा कि मांसाहारियों के मलाशय में जो भयंकर जीवाणु भरे रहते हैं और जो एपेन्डिसाइटिस, कोलाइटिस आदि कितने ही रोगों को (जिनमें शिरदर्द, रक्तावरोध इत्यादि भी सम्मिलित हैं) जन्म दिया करते हैं

उनसे छुटकारा पाना कितना असंभव काम है।" डाक्टर गिब्सन वार्ड (Dr. Gibsen Ward) लिखते हैं कि:—

"Acid blood is the origin and sustaining cause of all rheumatic affections. Go to the shambles and apply a bit of the test paper to the juice of the flesh there and you find it gives an acid reaction. People who are content with the herb-bearing seeds and the tree-producing fruits for their diet cannot have rheumatic pains or fevers or their joints cemented together in rheumatic arthritis. This acid blood is fruitful of other diseases e.g. leprosy and scurvy etc."

अर्थात् "सब प्रकार के वात-रोग की उत्पत्ति और स्थिति का एकमात्र कारण रक्त की अम्लता है। किसी क़साईख़ाने में जाओ और वहाँ मांस का थोड़ा सा रस लेकर एक टुकड़ा लिटमस काग़ज़ पर लगा कर देखो। तुम्हें उसकी प्रतिक्रिया सदैव अम्लकारक ही मिलेगी। जो लोग केवल पौधों पर उत्पन्न होने वाले अनाज और पेड़ों पर पैदा होने वाले फल खा कर संतुष्ट रहते हैं उन्हें वातपीड़ा अथवा वातज्वर नहीं सताता और न उनके हड्डियों के जोड़ में वात जनित जकड़न या तनाव ही पैदा होता है। वास्तव में रुधिर का यह अम्लत्व अन्य कई रोगों का भी कारण होता है जैसे कुष्ठ, स्कर्वी, इत्यादि।"

एक तीसरे डा० एलेक्ज़ेन्डर हेग (Alexander Haig, M.A., M. D. F. R. C. P.) ने अपने 'Uric Acid as a Factor in the Causation of Diseases' नामक ग्रन्थ में बतलाया है

कि सब प्रकार की शिरःपीड़ा केवल यूरिक एसिड के ही कारण उत्पन्न होती है और यह यूरिक एसिड शरीर में मांसाहार के द्वारा ज़ैन्थिन जातीय (Xanthine) वस्तुओं के साथ पैदा होती है। इसी डाक्टर ने एक दूसरे स्थान पर मांसाहार के सम्बन्ध में लिखा है कि मनुष्य के शरीर में भोजन के तत्व जिस प्रकार जीवित तत्वों में परिवर्तित होते हैं (human metabolism) उसकी पद्धति मांसभक्षी जानवरों के शरीर से भिन्न प्रकार की हुआ करती है। मांसभक्षी जानवरों के शरीर में मांसाहार के कारण जो ज़हरीले विकार पैदा होते हैं उन्हें दूर करने के लिये उसमें समुचित प्रबंध भी रहता है, किन्तु मनुष्य के शरीर में ऐसा कोई प्रबंध नहीं रहता। अतएव वह विकार रुधिर के साथ बहकर मनुष्य के सारे शरीर में फैलता है और स्थान-स्थान पर जमा होकर भांति-भांति की वात-जनित पीड़ाओं को जन्म दिया करता है। डाक्टर एफ़० डब्लू० पेवी (Dr. F. W. Pavy) लिखते हैं कि:—

"A vegetable and fruit diet quickly cures all the evils of rheumatism and gout." अर्थात् 'शाकाहार और फलाहार के द्वारा वात और गठिया की सारी शिकायतें शीघ्र दूर हो जाती हैं।'

अस्तु, मांसाहार के उपरोक्त दोषों को देखते हुए कोई भी समझदार व्यक्ति उसे स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी नहीं कह सकता। प्रत्युत् यदि हम उसे एक प्रकार से स्वास्थ्य-नाशक तथा हानिकारी वस्तु कहें तो भी कुछ अनुचित न होगा। अब रहा प्रश्न उसके प्रोटीन की उत्तमता का, सो इस विषय में दूध हमारा सबसे बड़ा सहायक हो सकता है। दूध की प्रोटीन मांस की प्रोटीन के समान ही नहीं; बल्कि उससे बढ़िया जाति की होती है। डाक्टर अलेक्ज़ेन्डर

हेग, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, इस विषय में लिखते हैं:—

'मांस का आदर वास्तव में उसकी प्रोटीन तथा लोहांश के लिये है। उसकी लोकप्रियता का मुख्य कारण यह है कि उसके द्वारा भूख में कुछ वृद्धि तथा शरीर में उत्तेजना जान पड़ती है। किन्तु यदि पौष्टिकता की दृष्टि से देखा जाय तो जो प्रोटीन जानवरों के मांस-पेशियों में पायी जाती है वह दूध या अंडे की प्रोटीन से बहुत घटिया दरजे की होती है।'

लगभग बीस वर्ष हुए योरोप के चार बड़े-बड़े राष्ट्रों की ओर से भोजन सम्बन्धी खोज के लिए एक 'अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक भोजन कमीशन' (International Scientific Food Commission) बैठा था जिसकी रिपोर्ट सन् १९१८ में प्रकाशित हुई थी। इस रिपोर्ट में कमीशन ने बतलाया था कि मांस की प्रोटीन शरीर के लिये कुछ विशेष रूप से आवश्यक नहीं है। दूध, पनीर, अंडे अथवा अनाज की प्रोटीन उसके बदले में आसानी से काम में आ सकती है।

इसी विषय में जगत्प्रसिद्ध सर राबर्ट मकारिसन (Sir Robert McCarrison) जो दक्षिण भारत के कोनूर नगर में पास्ट्यर इन्स्टिट्यूट की ओर से न्यूट्रिशनल रिसर्च के डायरेक्टर रह चुके हैं और जिन्होंने भारतीय ढंग के भोजनों के विषय में बहुत कुछ खोज की है अपने 'भोजन' नामक ग्रंथ में लिखते हैं, "Eggs are not so good as milk" अर्थात् "अंडों में उतनी अच्छाई नहीं है जितनी दूध में है।" तथा "अंडे और मांस दोनों ही शीघ्र सड़ने वाली वस्तुएँ हैं। अतएव इन्हें खाद्य-वस्तुओं की सूची से बिना किसी हानि के निकाला जा सकता है, किन्तु शर्त यह है कि उनके स्थान पर दूध का सेवन अवश्य किया जाय और साथ ही शरीर में लोहे की समुचित

मात्रा प्राप्त करने के लिए हरी तरकारियाँ भी काफ़ी तौर पर खाई जाँय।"

ऊपर जो जो सम्मतियाँ उद्धृत की गयी हैं वे सब ऐसे विद्वानों की हैं जिनकी योग्यता और निष्पक्षता के विषय में किसी को भी संदेह नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय भोजन कमीशन से बढ़कर प्रामाणिक राय भला और किसकी कही जा सकती है। किंतु उसकी भी वही राय है जो उपरोक्त अन्य विद्वानों की है। अतएव इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि स्वास्थ्य की दृष्टि से मांस और अंडों की अपेक्षा दूध, अनाज, फल और तरकारियाँ ही अधिक श्रेष्ठ हैं। अनाजों में गेहूँ और जौ अधिक श्रेष्ठ हैं तथा मूँग, अरहर और सोयाबीन प्रोटीन की दृष्टि से बढ़िया हैं। प्रायः एक छटाँक दाल में उतनी ही प्रोटीन मिलती है जितनी एक छटांक मांस में, अथवा दो छटाँक अंडे में, अथवा सात छटाँक दूध में प्राप्त होती है। यद्यपि यह सच है कि दाल की प्रोटीन निरर्थक और अपाच्य सेल्यूलोज़ के भीतर छिपी रहती है, किंतु आग पर पकाने से दाल का यह सेल्यूलोज़ अंश फूट कर बिल्कुल गल जाता है और उसकी प्रोटीन पचने योग्य तथा उपयोगी बन जाती है। हमारे यहाँ रोगियों को मूँग और अरहर की दाल प्रायः पथ्य के तौर पर दी जाती है और सदैव हितकारी सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त सेल्यूलोज़ का भाग भी बिल्कुल बेकार नहीं कहा जा सकता। यह हमारी आँतों को साफ़ रखने में सहायता देता है, कारण कि इसके द्वारा मलाशय के ऊपर कुछ बोझ पड़ता है जिससे वहाँ की मांसपेशियाँ संचालित हो उठती हैं और पाख़ाना बिल्कुल साफ़ हो जाता है। मांसाहारियों को क़ब्ज़ियत की शिकायत बहुत अधिक रहा करती है कारण कि उनके शरीर में मल का भाग बहुत कम बनता है और इसलिए वह मलाशय में चिपका रहता है। इसीलिए

डाक्टर लोग मांसाहारियों के लिए शाक-भाजी खाने पर बहुत जोर देते हैं जिससे उनकी आँतों में सेल्यूलोज़ का अंश पहुँचे और क़ब्ज़ न रहने पावे।

नैतिक दृष्टि से

नैतिक दृष्टि से मांसाहार का समर्थन कदाचित् कोई भी समझदार मनुष्य नहीं कर सकता। अतएव इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता हम नहीं समझते। मनुष्य-जीवन का अर्थ केवल पेट ही पालन नहीं है। वह अपने को संसार के सब प्राणियों से उत्तम कहता है। अतएव उसमें कुछ मनुष्यत्व का होना भी आवश्यक है। उसके जीवन का आदर्श पशुजीवन से ऊँचा होना चाहिए। हम अपने को सभ्य कहते हैं। किंतु सभ्यता की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि हम अपने को दूसरों की स्थिति में कहाँ तक देख सकते हैं, दूसरों के दुख-सुख को कहां तक अनुभव कर सकते हैं और उनके साथ सहानुभूति दिखाने की शक्ति हममें कहाँ तक बढ़ी हुई है। इस प्रकार की सभ्यता का आदर्श सबसे पहले हमारे भारतवर्ष ने ही संसार के सन्मुख रक्खा था, जो यहाँ के 'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः' के सिद्धांत में मौजूद है। इसी सिद्धांत के आधार पर भगवान बुद्ध ने संसार को 'अहिंसा परमोधर्मः' का उपदेश किया था। अंग्रेज़ी में इसी को 'Live and let live' (अर्थात् 'जियो और जीने दो') का सिंद्धात कह सकते हैं। किन्तु वहाँ इसका उपयोग प्रायः मनुष्यों ही तक परिमित समझा जाता है। इतर प्राणियों में वहाँ इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। हमारे यहाँ यह सिद्धांत 'सर्वभूतेषु' अर्थात् सब प्रकार के जीवधारियों के लिए लागू है।

उपरोक्त सभ्यता की कसौटी पर कस कर देखने से संसार के

तमाम मनुष्य हमें कई श्रेणियों में विभक्त दिखाई देते हैं। सब से पहले तो वे लोग हैं जो सब प्रकार की जीवहिंसा को बुरा समझते हैं और केवल दूध तथा वनस्पति-जातीय वस्तुओं को छोड़ कर कुछ नहीं खाते। इस श्रेणी में हम अपने जैन, वैष्णव एवं कुछ कट्टर जाति के बौद्धों को भी रख सकते हैं। दूसरी श्रेणी के लोग कुछ पाश्चात्य देश के शाकाहारी हैं जो मांस या मछली तो नहीं खाते, किंतु अंडे खा लिया करते हैं। इसके बाद तीसरी श्रेणी में वे लोग रक्खे जा सकते हैं जो कुछ धार्मिक विश्वास के कारण किसी विशेष जाति के पशु का मांस नहीं खाते, किंतु दूसरे जानवरों का मांस आनंदपूर्वक खाते हैं, यथा गोहत्या को बुरा समझने वाले हिंदू मांसाहारी तथा सुअर के मांस से परहेज़ करने वाले मुसलमान लोग। चौथी श्रेणी में संसार के शेष सभी मांसाहारी रक्खे जा सकते हैं जो केवल नर-मांस को छोड़ कर अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार भाँति-भाँति का मांस खाते हैं। अंतिम अथवा सबसे हीन श्रेणी में संसार की कुछ जंगली जातियाँ हैं जो मनुष्य तक का मांस खाने से नहीं हिचकतीं और जो 'असभ्य' के नाम से पुकारी भी जाती हैं।

मांसाहारियों की भूख बुझाने के लिए क़साईख़ानों में जो भीषण कांड हुआ करता है उसका चित्र अमेरिका के प्रसिद्ध डाक्टर केलग (Dr. Kellogg) अपनी सजीव भाषा में इस प्रकार खींचते हैं:—

"जिस समय मनुष्य अपना पेट भरने के लिए हत्या करने को तैयार होता है, उस समय क्या ही हृदय-विदारक दृश्य उपस्थित होता है। हाथ में उसके छुरी या कुल्हाड़ी रहती है, सामने बेचारे अबोध विश्वासी जीव दिखाई पड़ते हैं—वही भेड़ जो प्यार से उसका हाथ चाटा करती थी, वही बैल, हाँ, वही विश्वासी मित्र, जो किसी समय उसका खेत जोतता था। यकायक उनपर छुरी चलती है। भय

और निराशा की चीत्कार से वायु गूंज उठती है। सारा आकाश मंडल जीवों की चिल्लाहट और छटपटाहट से भर जाता है। पृथ्वी गरम लहू से नहा उठती है। और लोथों का ढेर चारों ओर लग जाता है।"

मालूम नहीं हमारे मांसाहारी भाई इस दृश्य को किस भाव से देखेंगे, किंतु इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि जिस कार्य में इतनी हृदयहीनता दिखानी पड़े, ऐसे ऐसे कारुणिक दृश्य उपस्थित हों और ऐसे अबोध जीवों का खून करना पड़े वह मनुष्यत्व की दृष्टि से कदापि उचित और न्याय-संगत नहीं कहा जा सकता।

अस्तु, स्वास्थ्य की दृष्टि से देखा जाय अथवा न्याय की दृष्टि से, किसी तरह भी मांस, मछली, या अंडे का खाना शरीर के लिए आवश्यक, उपयोगी या उचित नहीं कहा जासकता। निदान प्रश्न उठता है कि अब हम खायें क्या? इसका उत्तर सर राबर्ट मैकारिसन ने, (जिनका उल्लेख पहले हो चुका है) भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रांतों के भोजन की परीक्षा करके इस प्रकार दिया है कि पौष्टिकता की दृष्टि से देशी ढंग के तमाम भोजनों में सिक्खों का भोजन सब से अच्छा है। सिक्ख लोग प्रायः गेहूँ के मोटे आटे की रोटी, उरद की दाल, हरी सागभाजी, घी और दूध का व्यवहार करते हैं। कभी-कभी वे मांस भी खाया करते हैं। यदि मांस के स्थान में हम सोयाबीन को रख लें तो उपरोक्त भोजन हमारे लिए एक आदर्श भोजन कहा जा सकता है। पौष्टिकता की दृष्टि से मांस की अपेक्षा सोयाबीन अधिक श्रेष्ठ है। दाल उरद के बजाय मूँग या अरहर की भी खाई जा सकती है। किंतु दूध की मात्रा कम न होनी चाहिए। सर राबर्ट की सम्मति में प्रत्येक मनुष्य के लिए कम से कम एक पाइंट (अर्थात् दस छटाँक) दूध रोज़ पीना अत्यंत आवश्यक है और यदि अधिक पिया जाय तो अच्छा है।

ग़रीबी का प्रश्न

किंतु इस सम्बंध में सब से बड़ी कठिनाई जो आगे आती है वह है अपनी भयंकर ग़रीबी का प्रश्न। जिस देश में अधिकांश मनुष्यों को ज्वार और बाजरे की सूखी रोटी तक मुश्किल से नसीब हो वहाँ केवल पौष्टिक भोजनों का ज्ञान ही फैलाने से क्या लाभ हो सकता है। अभी हाल में जो भारत-सरकार की ओर से हेल्थ बुलेटीन का नया अंक निकला है उसमें भी एक स्थान पर इसी कठिनाई की ओर लक्ष्य किया गया है। बुलेटीन में भारतीय भोजनों की विशद विवेचना करने के पश्चात् सुव्यवस्थित आहार (balanced diet) का ज़िक्र करते हुए एक स्थान पर लिखा है:—

" Well-balanced diets are in general more expensive than deficient ones. For example, the ill-balanced diet, shown in the diagram, which is largely composed of rice, and contains very little milk, vegetable or fruit would cost about Rs. 2\8 per adult per month; the well-balanced diet, richer in milk and other foods about Rs. 5\- to Rs. 6\-. It is at this point that the nutrition worker encounters the main difficulty. Those who suffer from under or mal-nutrition cannot afford to purchase a satisfactory diet."

अर्थात् "सुव्यवस्थित भोजन का ख़र्च त्रुटिपूर्ण भोजनों की अपेक्षा अधिक पड़ता है। उदाहरणार्थ कुव्यवस्थित भोजन में जैसा नक़्शे में दिखाया गया है, चावल की मात्रा अधिक रहती है और

दूध, शाकभाजी, या फलों की मात्रा बहुत ही कम; अतएव इसका प्रबंध एक पूरे मनुष्य के लिए लगभग २॥) रुपये माहवार में हो जाता है, किन्तु सुव्यवस्थित आहार जिसमें दूध एवं अन्य वस्तुओं की मात्रा अधिक होती है पाँच या छः रुपये में जाकर पड़ता है। निदान यही एक प्रश्न है जिसमें आहार संबंधी कार्यकर्ता को सबसे बड़ी कठिनाई दिखाई देती है। जिन लोगों को पोषण अपूर्ण अथवा दोषपूर्ण मिलता है उनमें ऐसी समाई ही नहीं कि वे अच्छे अथवा संतोषजनक भोजन को ख़रीद सकें।"

अस्तु, इस देश में आहार सम्बन्धी ज्ञान उसी समय पूर्ण उपयोगी बन सकता है जब यहाँ की आर्थिक परिस्थिति में भी कुछ उन्नति की जाय।

दूसरा अध्याय

दूध की महिमा

धातु करन औ' बलधरन, जो पूछे मोहि कोय।
पय समान या जगत में, है नहिं दूसर कोय॥

दूध प्रकृति की पाकशाला का तैयार किया हुआ एक अद्वितीय भोजन है। यद्यपि फल-फूल, मेवे और अनाज भी हमारे शारीरिक सुख और स्वास्थ्य को बढ़ाने वाले भोजन हैं, और यद्यपि इनकी भी रचना प्रकृति के ही कारख़ाने में हुई है, किन्तु ये प्रकृति के भोजन उस अर्थ में नहीं कहे जा सकते जिस अर्थ में हम दूध को कहते हैं। फल-फूल और मेवे वृक्षों पर लगते हैं, किन्तु इनका उद्देश्य वृक्षों के लिए बीज तैयार करना और उनकी वंश-रक्षा करना है। हमारे भोजन की सामग्री बनना नहीं। अनाज भी कुछ वृक्षों के ही बीज हैं। उनके जन्म का उद्देश्य भी हमारी भूख बुझाना नहीं, बल्कि उन वृक्षों की नई संतान उत्पन्न करके उनका परिवार बढ़ाना है। दूध की उत्पत्ति का ऐसा कोई उद्देश्य नहीं है। वह सन्तान उत्पन्न करने के लिए नहीं, बल्कि सन्तान की भूख बुझाने के लिए पैदा किया गया है। अर्थात् प्रकृति ने समझ-बूझ कर उसे भोजन के लिए ही बनाया है। यह बात किसी दूसरी वस्तु के विषय में नहीं कही जा सकती। इसलिए दूध को यदि हम प्रकृति का एक अद्वितीय भोजन कहें तो सर्वथा ठीक और उचित होगा।

बच्चा जिस समय माता के गर्भ में आता है उसी समय से प्रकृति को उसको भोजन की चिन्ता पड़ जाती है। शीघ्र ही माता की छातियों में दुग्धवाही ग्रंथियाँ विकसित और परिपक्व होने लगती हैं, और बच्चे के धरती पर गिरते-न-गिरते उसके लिए अमृत तुल्य बना-बनाया स्वर्गीय भोजन तैयार कर देती हैं। जब तक बच्चे के मुँह में दाँत नहीं आते और वह दूसरे प्रकार का भोजन करने योग्य नहीं हो जाता, तब तक यही दूध पीता है और इसी के बल से जीता और बढ़ता रहता है। यही कारण है कि संस्कृत में दूध का एक नाम "बालजीवन" भी रक्खा गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि दूध को प्रकृति ने बच्चों ही के लिए पैदा किया है बड़ों के लिए नहीं। पशुओं के बच्चे ज्योंही अपना भोजन चबाकर या काट कर खाने योग्य हो जाते हैं त्योंही उनका दूध पीना छूट जाता है। किन्तु पशुओं की तरह मनुष्य प्रकृति का ग़ुलाम नहीं है। वह प्रकृति को स्वयं अपना ग़ुलाम बनाना चाहता है। और उसे एक पालतू जानवर की तरह वश में रखना चाहता है। सच पूछिये तो इसी में उसकी अन्य जीवधारियों पर श्रेष्ठता और उच्चता भी है। अस्तु, ज्योंही उसने दूध के अमृत तुल्य गुणों को देखा त्योंही उसे अपना जीवन-सखा बनाना निश्चित कर लिया। गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि पशु पाले जाने लगे। और इनका दूध हमारे जीवन का एक आवश्यक अंग हो गया।

सुविधा के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पशु पाले जाते हैं और उन्हीं का दूध काम में लाया जाता है। कहीं भेड़ और बकरियों का दूध पिया जाता है तो कहीं घोड़ी गधी, अथवा ऊँटनी का दूध निकाला जाता है। तिब्बत की तरफ याक (yak) नाम का एक जानवर होता है, वहाँ उसी का दूध पिया जाता है।

अफ्रीका में जेब्रा (Zebra = एक गधे के समान पशु) और दक्षिणी अमेरिका में लामा (Llama = एक ऊँट के समान पशु) नामक पशु का दूध पिया जाता है। हमारे देश में भी उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भारत में भैंस का दूध अधिक काम में आता है। किन्तु सब तरफ दृष्टि दौड़ा कर देखने से जान पड़ता है कि संसार में दूध के लिए जितनी अधिक गाय लोकप्रिय है उतना कोई भी जानवर नहीं। उत्तरीय और दक्षिणीय अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा योरोप के समस्त देशों में गाय का ही आदर है। और हमारे देश में तो प्राचीन काल से ही गौ को माता का पद दे दिया गया है। अस्तु, हमें भी इस पुस्तक में अपना लक्ष्य विशेषत: गाय के ही दूध पर रखना उचित जँचता है।

गाय के दूध में मानव शरीर को धारण और पोषण करने के योग्य सभी उपादान मौजूद हैं। यदि हम चाहें तो केवल गाय का दूध पीकर सारा जीवन व्यतीत कर सकते हैं। हमें किसी दूसरे प्रकार के भोजन की आवश्यकता न पड़ेगी। यहां तक कि हमें पानी भी पीने की जरूरत नहीं। दूध में पानी का अंश पर्य्याप्त रूप से मौजूद रहता है। साथ ही इस एकांत दूध-सेवन से शरीर दुर्बल होने के बजाय अधिक बलवान और फुर्तीला जान पड़ेगा और चेहरे का रंग भी पहिले से अधिक चमकीला हो जायगा। संसार में आज तक एक भी ऐसा भोजन नहीं मिला है जिसकी तुलना इस सम्बन्ध में दूध के साथ की जा सके। कुछ वैज्ञानिकों ने इस प्रकार का कोई कृत्रिम भोजन तैयार करने का भरसक प्रयत्न भी किया किन्तु असफल रहे।

दूध की महिमा प्रत्येक काल में सभी जाति और देश के मनुष्यों ने गायी है। हमारे प्राचीन राजसभा के भूषण कवि शिरोमणि लोलिम्बराज अपनी कांता से कहते हैं:—

सौभाग्य-पुष्टि-बल-शुक्र विवर्धनानि ।
किं सन्ति नो भुवि बहूनि रसायनानि ।
कन्दर्पवर्धिनि परन्तु सिताज्ययुक्ता ।
दुग्धादृते न मम केऽपि मतः प्रयोगः ॥

अर्थात् "पृथ्वी पर सौभाग्य, पुष्टि, बल और वीर्य को बढ़ानेवाली क्या बहुतेरी औषधियाँ नहीं हैं ? किन्तु फिर भी हे सुन्दरी ! मेरी समझ में घी मिले हुए दूध से बढ़ कर कोई नहीं है ।" भावप्रकाश में भी दूध के गुण इस प्रकार कहे गये हैं :—

दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वातपित्तहरं सरम् ।
सद्यः शुक्रकरं शीतं सात्म्यं सर्व शरीरिणाम् ॥
जीवनं बृंहणं बल्यं मेध्यं वाजीकरं परम् ।
वयस्थापनमायुष्यं सन्धिकारि रसायनम् ॥
विरेकवान्तिबस्तीनां सेव्यामोजोविवर्द्धनम् ॥

अर्थात्—'दूध, मधुर चिकना, वायु-पित्तनाशक दस्तावर, वीर्य को शीघ्र पैदा करने वाला, शीतल, सब जीवधारियों के अनुकूल, जीवनस्वरूप, पुष्टिकारी, बलदायक, बुद्धिवर्द्धक, अत्यंत वाजीकरण, जवानी को क़ायम रखनेवाला, आयुवर्धक, सन्धानकारक, रसायन और वमन-विरेचन तथा वस्ति-क्रिया के समान ओज को बढ़ाने वाला है ।"

'ख़ज़ासुल अदविया' यूनानी चिकित्सा अथवा हिकमत का निघंटु समझा जाता है । उसमें भी गाय के दूध के विषय में लिखा है:—"गाय का दूध किसी क़दर मीठा और सफ़ेद मशहूर है । सिल, तपेदिक़ और फेफड़े के ज़ख़्म के लिए मुफ़ीद है । ग़म को दूर करता है और ख़फ़क़ान को फ़ायदेमन्द है । चमड़े पर रंगत लाता है,

और बदन को मोटा करता है। दिल और दिमाग़ को मज़बूत बनाता है, मनी पैदा करता है और जल्द हज़म हो जाता है।"

दूध में कैलशियम, पोटैशियम, सोडियम आदि कुछ ऐसे क्षार मौजूद हैं जिनकी शरीर को अत्यधिक आवश्यकता रहती है। साथही इसमें आयोडीन, संखिया, कुचला, सोना, तांबा आदि धातुएँ भी अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में मिलती हैं जो इसके स्वास्थ्यकारी गुणों को और भी अधिक बढ़ा देती हैं। इनके अतिरिक्त वाइटेमिन भी दूध में प्रायः सभी प्रकार के मिलते हैं। विशेषतः वाइटेमिन ए, सी, और डी की मात्रा इसमें प्रचुर रूप से मिलती है, तथा वाइटेमिन बी और जी भी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में पाये जाते हैं।

दूध की श्रेष्ठता का एक महत्वपूर्ण कारण और भी है। वह यह कि इसके द्वारा शरीर में यूरिक एसिड (uric acid) नाम की विषैली वस्तु बिल्कुल नहीं बनती। बहुधा लोगों के मूत्र में बड़ी तीव्र दुर्गंध हुआ करती है। कारण कि उनके शरीर में यह यूरिक एसिड बहुत अधिक बढ़ जाता है और वही मूत्र के मार्ग से निकला करता है। यूरिक एसिड की वृद्धि से कई प्रकार के रोग पैदा होजाते हैं। दूध से यूरिक एसिड बिल्कुल नहीं बनता और यही कारण है कि दूध पीने वाले बच्चों के मूत्र में गंध प्रायः बिल्कुल नहीं पायी जाती।

प्राचीन यूनान के आदि धनवन्तरि हिपोक्रेटिस ने भी क्षय रोग में गधी का दूध पीने की सलाह दी है। वर्तमान काल में योरोप और अमेरिका के कई डाक्टर केवल दूध के द्वारा चिकित्सा करते हैं और इस विषय का वहाँ साहित्य भी बढ़ रहा है। हमारे देश में भी कतिपय रोगों में दूध एवं मट्ठे का कल्प वैद्य लोग कराया करते हैं। सच तो यह है कि बच्चों को जीवित रखने, निर्बलों को बलवान

बनाने, बूढ़ों का बुढ़ापा दूर करने, और कई प्रकार के रोगियों के रोग अच्छा करने की जैसी शक्ति दूध में है वैसी किसी में भी नहीं है।

दूध के सेवन से शरीर की वृद्धि

दूध का प्रभाव शारीरिक वृद्धि पर कैसा पड़ता है इसे मालूम करने के लिए योरोप और अमेरिका में अनेकों प्रयोग किये जा चुके हैं। सब का परिणाम यही निकला है कि अन्य प्रकार के भोजनों की अपेक्षा दूध के व्यवहार से शरीर की ऊँचाई और तौल में अधिक वृद्धि होती है। उदाहरण-स्वरूप नीचे दो एक प्रयोगों का हाल दिया जाता है :—

(१) लंदन शहर में एच्. सी. सी. मान नाम के अंग्रेज़ी डाक्टर ने यह प्रयोग पांचसौ लड़कें पर लगभग चार वर्ष तक किया था, जिसका पूरा-पूरा विवरण बृटिश मेडिकल रिसर्च कौंसिल के सन्मुख पेश किया गया था। लड़के सब लंदन के अनाथालयों (poor house) में से छांटे गये थे। इनकी डाक्टरी परीक्षा पहले करली गयी थी और जिस किसी में ज़रा भी किसी रोग का संदेह हुआ था उसे तुरंत निकाल दिया गया था। सब लड़कों को कई भागों में विभक्त करके अलग-अलग डाक्टरों की देख-रेख में रखा गया। पश्चात् एक भाग के लड़कों को उनकी अवस्था के अनुसार साधारण पौष्टिक भोजन दिया जाने लगा, जो सब प्रकार से उनकी आवश्यकताओं के लिए काफ़ी समझा जाता था और जिसकी पौष्टिकता के विषय में सरकारी डाक्टरों ने भी सनद दे रक्खी थी। शेष दूसरे भागों में से एक की ख़ूराक में कुछ चीनी बढ़ा दी गयी, दूसरे में प्रोटीन का अंश अधिक किया गया, तीसरे को मारगेरिन (अर्थात् चर्बी)

ज्यादा दी जाने लगी और चौथे को मक्खन । पाँचवें अर्थात् अंतिम भाग की ख़ूराक में थोड़ा सा दूध शामिल कर दिया गया। परीक्षा के अंत में जब हर एक भाग के लड़कों को तौल-नाप कर देखा गया तो मालूम हुआ कि दूध अथवा मक्खन खाने वाले बालकों के शरीर में औरों की अपेक्षा तौल में डेढ़ किलोग्राम से लेकर तीन किलोग्राम तक (अर्थात् लगभग पौने दो सेर से लेकर सवा तीन सेर तक) तथा ऊँचाई में साढ़े चार से लेकर साढ़े पाँच सेन्टीमीटर तक अधिक वृद्धि हुई थी । इन लड़कों का शरीर दूर से देखने में ख़ूब उन्नत और पुष्ट जान पड़ता था । इसके अतिरिक्त एक उल्लेखयोग्य बात यह भी हुई कि परीक्षाकाल में जिस समय और सब लड़कों को सरदी और ज़ुकाम की शिकायत पैदा होगयी थी, ये दूध और मक्खन खानेवाले लड़के इन रोगों से बिल्कुल मुक्त थे।

(२) सन् १६२६-२७ में स्काटलैंड की स्वास्थ्य-समिति ने भी दूध का प्रभाव बच्चों के स्वास्थ्य पर मालूम करने लिए एक उपसमिति क़ायम की थी। इस उपसमिति-द्वारा स्काटलैंड के कितने ही शहरों और कस्बों में अनेकों प्रयोग स्कूली लड़कों पर किये गये थे। हर एक स्थान के लड़कों को चार समूह में विभक्त किया गया था, जिनमें से प्रत्येक समूह के लड़कों की संख्या ४० से लेकर ५० तक थी। एक समूह को केवल नित्य-प्रति के साधारण भोजन पर रक्खा गया। दूसरे को कुछ बिस्कुट भी दिया जाने लगा । तीसरे समूह को मखनिया दूध और चौथे को शुद्ध स्वाभाविक दूध भोजन के साथ सम्मिलित किया गया । दूध का परिणाम प्रत्येक बालक की अवस्था के अनुसार निश्चित किया गया था। ५-६ वर्ष तक के बालक को प्रतिदिन ¾ पाइंट (=७।। छटाँक) दूध मिलता था;

८-६ वर्ष के बालक को एक पाइंट (=१० छटाँक), तथा १३-१४ वर्ष के बालक को सवा पाइंट (=१२॥ छटाँक) दूध दिया जाता था। यह प्रयोग नवम्बर से लेकर जून तक (अर्थात् लगभग सात महीने तक) बराबर चलता रहा। पश्चात् सब लड़कों को तौल-नाप कर देखा गया तो मालूम हुआ कि शुद्ध स्वाभाविक दूध पीने वाले बालकों के शरीर दूध न पीने वाले बालकों की अपेक्षा लगभग २० फ़ी सदी तौल और ऊँचाई में ज़्यादा बढ़ गये थे। साथ ही उनके शरीर की रंगत और बालों की चमक भी बहुत अच्छी होगयी थी।

मखनिया दूध पीनेवाले बालकों के शरीर में भी बिना दूधवाले बालकों का अपेक्षा अधिक उन्नति हुई थी, यद्यपि वह स्वाभाविक दूध के बराबर न थी। साधारण लोगों का विश्वास है कि चिकनाई निकल जाने पर दूध बेकार होजाता है। यह एक भारी भूल है, जैसा कि हम आगे चलकर मखनिया दूध का वर्णन करते हुए बतलावेंगे। भारतवर्ष में भी अभी हाल में सर राबर्ट मैकारिसन ने कोनूर नगर के कुछ स्कूली लड़कों पर मखनिया दूध का प्रयोग किया था। वहाँ भी इस दूध की उपयोगिता भली भाँति सिद्ध हो चुकी है। इसका पूरा विवरण हम आगे चल कर मखनिया दूध के वर्णन के साथ लिखेंगे।

इस देश के वर्तमान वाइसराय लार्ड लिनलिथगो साहब ने यहाँ पधारते ही स्कूली बच्चों को दूध पिलाने के विषय में ज़ोर देना आरंभ किया, जिसके परिणाम-स्वरूप कुछ स्थान के स्कूलों में अब ग़रीब बालकों को मुफ़्त दूध मिलने लगा है। आरंभ में जिस समय शिमला की म्युनिसिपैलिटी द्वारा इस प्रकार बच्चों में दूध बाँटा गया था उस अवसर पर उक्त लार्ड साहब ने भी अपने व्याख्यान में कहा था:—

'It is a scientific fact beyond doubt that a liberal supply of milk is an essential constituent of diet for

growing children; nor can there be the slightest doubt but that good nourishment in the early years of life is essential to the building up of a strong constitution in after-life. Let me give you quite shortly the result of a very carefully conducted experiment carried out in my own country. This experiment showed that the addition of a pint of milk a day to the ordinary diet of growing boys converted an average annual gain in weight of 3·85 lbs, per boy to one of no less than 6·98 lbs., and increased the average gain in height of 1·84 inches to one of 2·63 inches.'

अर्थात् 'बढ़ते हुए बच्चों की खूराक में दूध का प्रचुर मात्रा में होना एक अत्यंत आवश्यक बात है जिसकी सत्यता वैज्ञानिक रीति से सिद्ध हो चुकी है और जिसमें किसी प्रकार का भी संदेह नहीं उठ सकता। साथ ही इसमें भी संदेह नहीं कि जीवन के प्रारंभिक दिनों में अच्छा और पौष्टिक भोजन मिलने से ही आगे चल कर सुदृढ़ और हृष्ट-पुष्ट शरीर बना सकता है। अभी थोड़े दिन की बात है इस सम्बंध में एक प्रयोग स्वयं मेरे देश में बड़ी सावधानी के साथ किया गया था जिसका परिणाम मैं आप लोगों को भी बतलाना चाहता हूँ। इस प्रयोग का परिणाम यह निकला था कि बढ़ते हुए बच्चों की खूराक में एक पाइन्ट (=१० छटांक) दूध शामिल कर देने से उनके शरीर की औसत बाढ़ ३·८५ पाउंड के बजाय ६·९८ पाउंड तौल में, तथा १·८४ इञ्च के बजाय २·६३ इञ्च ऊँचाई में अधिक होगयी थी।''

दूध के सेवन से आयु की दीर्घता

किन्तु दूध के सेवन से केवल शरीर की तौल और ऊँचाई ही

नहीं बढ़ती, बल्कि उसकी आयु भी बहुत कुछ बढ़ जाती है। प्राचीन काल में जिस समय हमारे देश में दूध, घी और मक्खन की प्रचुरता थी और घर-घर में गौओं का निवास था, उस समय यहाँ के लोग लम्बे-.चौड़े और बलवान होने के साथ-साथ दीर्घायु भी अधिक होते थे। किन्तु जब से यहाँ इन वस्तुओं का अकाल पड़ा तभी से भाँति भाँति के रोगों ने यहाँ घर कर लिया और मनुष्यों की आयु भी एकबारगी कम हो गयी। इस समय अंग्रेजों की औसत आयु प्रायः ५२ वर्ष की समझी जाती है, किन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि भारतवासियों की आयु का औसत २२ वर्ष से अधिक नहीं पड़ता।

योरोप के सभी देशों में भारतवासियों की अपेक्षा दूध और मक्खन की खपत अधिक है, किन्तु योरोपीय देशों में भी सबसे अधिक खपत इन वस्तुओं की बल्गेरिया देश में है। बल्गेरिया एक बिल्कुल छोटा सा देश है और उसकी आबादी केवल ५० लाख आदमियों से अधिक नहीं है। यहाँ के लोगों में दूध, दही और पनीर खाने की चाल सब जगह से अधिक बढ़ी हुई है। प्रायः हर एक मनुष्य अपने नित्य के भोजन में इन वस्तुओं का व्यवहार अवश्य और खूब अधिकता के साथ किया करता है। परिणाम-स्वरूप सबसे अधिक दीर्घजीवी लोग यहीं के पाये जाते हैं। पेरिस की पास्ट्यर इन्स्टिट्यूट (Pasteur Institute) नामक संस्था द्वारा एकत्र किये हुए आँकड़ों से पता लगता है कि यहां की इस छोटी सी बस्ती में लगभग ५००० मनुष्य ऐसे हैं जिनकी अवस्था १०० वर्ष की या उससे भी ऊपर है।

आक्षेपों पर विचार

इतना होते हुए भी संसार में कितने ही लोग दूध के विरुद्ध अपना मत रखते हैं। अधिकतर इस विचार के लोग योरोप और अमेरिका के

फलहारी अथवा शाकाहारी पक्षवालों में ही पाये जाते हैं। हमारे देश में इस प्रकार दूध के विरुद्ध कोई विशेष मत रखनेवाले केवल नाम मात्र को मिलेंगे। फिर भी हमारा उद्देश्य इस पुस्तक में दूध के हर पहलू पर विचार करने का है, अतएव इसके विरुद्ध आक्षेपों पर भी विचार करना आवश्यक जान पड़ता है। नीचे संक्षेप में हम मुख्य-मुख्य आक्षेपों पर विचार करते हैं—

(१) दूध बछिया या बछड़ों की खूराक है, आदमी की नहीं। सुनते हैं चीन के लोगों में भी यह विश्वास फैला हुआ है कि पशुओं का दूध पीने से आदमी की बुद्धि पशु के समान हो जाती है। इसलिए वे लोग जानवर का दूध नहीं पीते, बल्कि सोयाबीन को पीसकर एक प्रकार का दूध तैयार करते हैं और उसी को पीते हैं। ऊपर की दलील भी कुछ इसी प्रकार की सी जँचती है। प्रत्यक्ष अनुभव इस बात को बतलाता है कि दूध हमारे शरीर के अनुकूल पदार्थ है। फिर ऐसी दलील से क्या मतलब है समझ में नहीं आता। नैतिक दृष्टि से भले ही यह दलील कुछ सार्थक जान पड़े, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से यह बिल्कुल निरर्थक है। और नैतिक दृष्टि से भी यदि हम बछड़ों की खूराक छीनकर स्वयं पी लेना अन्याय समझते हैं तो, वही आक्षेप सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर हर प्रकार के भोजन पर लगाया जा सकता है। जैसा कि पहिले कह चुके हैं अनाज या फल वृक्षों की संतान उत्पन्न करने के उद्देश्य से ही रचे गए हैं। तब उनसे अपनी बुभुक्षाग्नि को बुझाना कहाँ तक न्यायोचित समझा जायगा।

(२) दूध बच्चों का भोजन है, बड़ों का नहीं। किन्तु नित्य-प्रति के अनुभव से यह बात सिद्ध है कि दूध बड़ों को उसी प्रकार पच जाता है जैसे बच्चों को। और उसी प्रकार दोनों को गुणदायक भी है। बच्चों के पेट की ग्रंथियों से 'रेनिन' (renin) नामक एक प्रकार का रस

निकलता है जिसमें दूध को फाड़ कर पचा देने की शक्ति रहती है। किन्तु डाक्टरों का कहना है कि 'यह रस बूढ़े और जवान दोनों के पेट में भी उसी प्रकार पैदा होता है जैसे बच्चों के पेट में। अतएव दूध सब अवस्था के मनुष्यों के लिए समानरूप से अनुकूल है।

(३) **दूध शरीर में कफ़ या श्लेष्मा बढ़ाता है।** इसमें संदेह नहीं कि कुछ मनुष्यों के शरीर में दूध पीने से श्लेष्मा की वृद्धि होती जान पड़ती है। किन्तु इसका कारण स्वास्थ्य-विद्या के विशारद (Physical culturist) प्रसिद्ध अमेरिकन बर्नर मैक्फैडन (Bernerr Macfadden) साहब के शब्दों में कुछ दूसरा ही है। उनका कहना है कि कितने ही मनुष्य इस प्रकार की वस्तुएँ खाया करते हैं जिनसे शरीर में विजातीय द्रव्य (toxin) बहुत अधिक परिमाण में उत्पन्न होता रहता है। शरीर स्वभावतः इन्हें बाहर निकालना चाहता है और इसलिए अपनी श्लैष्मिक ग्रन्थियों से एक प्रकार का चिकना रस पैदा करता है जिसे हम कफ़ या श्लेष्मा कहते हैं। इस श्लेष्मा के द्वारा शरीर के तमाम दूषित पदार्थों के निकलने का रास्ता चिकना पड़ जाता है, जिससे उनके बाहर निकल जाने में आसानी पड़ती है। दूध इन दूषित पदार्थों को निकालने में मदद पहुँचाता है। अतएव ऐसी अवस्था में दूध के सेवन से कफ़ का स्राव बढ़ जाता है। किन्तु यदि दूध का सेवन बराबर जारी रखा जाय और दूसरे प्रकार के सब भोजन बंद कर दिये जाँय तो कुछ ही समय बाद सारे दूषित पदार्थ हमारे शरीर से बाहर निकल जाँयगे और साथ ही कफ़ बनना कम हो जायगा। जितने अम्लकारक (acid forming) पदार्थ होते हैं वे ही शरीर में कफ़ पैदा करते हैं। क्षारात्मक (alkaline) वस्तुएँ, जैसे फल अथवा शाक-भाजी, अम्लत्व को रोक कर कफ़ को कम करने वाली हैं। दूध भी

क्षारात्मक (alkaline) है, अतएव कफ़ को बढ़ानेवाला नहीं, बल्कि घटानेवाला है। हाँ, कुछ ऐसी अवस्थाएँ हो सकती हैं जहाँ आरंभ में भी थोड़ा कफ़ का बढ़ना भयजनक समझा जाय। अवश्य ही ऐसी अवस्था में दूध का सेवन उचित न होगा। किन्तु इन विशेष अवस्थाओं को छोड़ कर शेष साधारण रूप से दूध का सेवन कफ़ की शिकायत में सदैव लाभकारी ही सिद्ध होता है।

(४) चौथा आक्षेप दूध के विषय में यह किया जाता है कि **इसमें प्रोटीन (मांस को बढ़ाने वाला पदार्थ विशेष) का अंश आवश्यकता से अधिक रहता है,** जिसे बाहर करने के लिए गुर्दों पर ज़ोर पड़ता है। यह सत्य है कि दूध में प्रोटीन का अंश कुछ अधिक रहता है, क्योंकि दूध का काम ही शरीर को बढ़ाना और पुष्ट करना है। बच्चों का शरीर प्रति क्षण बढ़ता और पुष्ट होता रहता है, इसलिए उन्हें दूध के प्रोटीन की अधिक आवश्यकता पड़ती है। बड़ों के लिए, जिनका शरीर पूरी बाढ़ पर आ चुकता है, उसमें अधिक प्रोटीन की आवश्यकता नहीं पड़ती। किन्तु फिर भी जो बीमारी से क्षीणांग और निर्बल होगए हैं उनके शरीर-निर्माण के लिए तो दूध के अधिक प्रोटीन की आश्यकता पड़ती ही है। इसके अतिरिक्त जिन्हें अधिक प्रोटीन की आवश्यकता नहीं पड़ती उनके लिए भी दूध में इतनी अधिक प्रोटीन नहीं है कि उनके शरीर पर कोई हानिकारी प्रभाव पड़े। दूध की प्रोटीन मांस अथवा अनाजों की प्रोटीन से बहुत जल्दी पच जाती है और जो कुछ नहीं भी पचती वह बिना कोई विकार पैदा किये आसानी से बाहर निकल जाती है।

(५) बहुत से कट्टर शाकाहारी जिस प्रकार मांस से परहेज़ करते हैं उसी प्रकार दूध से भी परहेज़ रखते हैं। कारण कि दूध भी पशु के ही शरीर से निकलता है। किन्तु इस प्रकार के तर्क पर अधिक

माथापची करना केवल समय बर्बाद करना है। पशुओं का दूध पीना और उनका रक्तमांस खाना बराबर नहीं कहा जा सकता। रक्तमांस के लिए पशु की हत्या करनी पड़ती है, दूध के लिए किसी पशु की हत्या नहीं करनी पड़ती।

(६) छठा और अन्तिम आक्षेप जो दूध के सम्बन्ध में किया जाता है वह उसकी शुद्धता के विषय में है। दूध संसार की तमाम खाद्य वस्तुओं में सब से अधिक सुकुमार है। यह हवा दिखाने से ही ख़राब हो सकता है। सहस्रों प्रकार के रोग के बीजाणु हवा में उड़ते फिरते हैं। दूध में पहुँचते ही इनकी संख्या भयंकर तेज़ी के साथ बढ़ जाती है। इसलिए कभी-कभी दूध प्राणघातक तक बन जाता है। सर्दी, ज़ुकाम, खाँसी, क्षय, हैजा इत्यादि कितने ही संक्रामक रोगों के बीजाणु वायुद्वारा दूध में पहुँच कर भयंकर सिद्ध हो सकते हैं। पशु के थन से लेकर हमारे मुँह तक पहुँचने में दूध के लिए अशुद्ध होने के कितने ही अवसर उपस्थित होते हैं, जिनसे बचाये रखना बहुत कठिन है। अतएव कुछ लोगों की राय में इससे दूर ही रहना ठीक है।

इसमें सन्देह नहीं कि जिस समय हम हवा में उड़नेवाले विषैले रोगाणुओं का ज़िक्र पढ़ते हैं और उनकी छूत दूध में पहुँचने की संभावना पर विचार करते हैं तो हृदय में एकबारगी भय का संचार हो उठता है और दूध को दूर से ही प्रणाम करने की इच्छा पैदा हो जाती है। किन्तु व्यवहारिक रूप से यदि देखा जाय तो संसार में दूध का जितना भारी व्यापार फैला हुआ है और उसकी जितनी अधिक खपत मनुष्य समाज में हो रही है, उसे देखते हुए जितनी बीमारियाँ दूध के कारण सचमुच पैदा हुआ करती हैं वे बिल्कुल ही थोड़ी जान पड़ती हैं। बात यह है कि जहाँ कितने ही रोगों के बीजाणु हैं वहीं उनके शत्रु कितने दूसरे प्रकार के भी बीजाणु प्रकृति ने रच दिये हैं। इससे

उनकी बाढ़ में बहुत कुछ रुकावट पड़ा करती है। स्वयं हमारे शरीर में भी इन विषैले रोगाणुओं को मारने और दबाने का बहुत कुछ प्रबंध रहता है, जिससे ये रोगाणु, जब तक बहुत ही अधिक संख्या में हमारे अन्दर न पहुँचें, हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। इसके अतिरिक्त जो कुछ थोड़ा बहुत खटका दूध के द्वारा रोगों के फैलाने का है भी तो उसके लिए दूध जैसी अद्वितीय वस्तु को ही छोड़ बैठना उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि इस तरह तो सभी प्रकार के भोजन में रोगों की छूत पहुँचने का कुछ न कुछ खटका रहता है। यहाँ तक कि हमारे श्वास की वायु और पीने का पानी तक इस भय से ख़ाली नहीं है। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि क़ानून और म्युनिसिपैल्टीयों की सहायता से तथा जनता में इस विषय की शिक्षा का प्रचार करके दूध में शुद्धता लाने का उपाय किया जाय। जब तक शुद्ध दूध मिलने का उचित प्रबंध न हो हमें स्वयं भी दूध को नियत समय तक गरम करके पीना चाहिए। अथवा जिस डेयरी या कारखाने में दूध वैज्ञानिक विधियों से (Sterilisation or Pasteurisation) द्वारा) शुद्ध किया जाता हो वहाँ से मँगा कर दूध पीना चाहिए। यद्यपि इस प्रकार गरम किये हुए अथवा वैज्ञानिक रूप से शुद्ध किए हुए दूध के बहुत कुछ वाइटेमिन नष्ट हो जाते हैं, किन्तु उसकी कमी हम एक टमाटर खाकर अथवा नींबू या संतरे का रस पीकर पूरी कर सकते हैं। उसके लिए अपने को रोगों की जोखिम में डालना उचित नहीं।

इस प्रकार सब बातों पर विचार कर लेने पर भी अंत में यही परिणाम निकलता है कि दूध मनुष्य के लिए हर हालत में कल्याणकारी है और उसे त्यागना कदापि उचित नहीं। महात्मा

गाँधी स्वयं लिखते हैं कि मैंने दूध का स्थानापन्न कोई दूसरा भोजन बहुत कुछ खोजा, किन्तु नहीं मिला। लाचार मुझे बकरी का दूध अपनी खूराक में शामिल करना पड़ा। जर्मनी के महाकवि गेटे (Goethe) भी अपने जीवन का अंतिम भाग केवल दूध और एक टुकड़ा रोटी पर व्यतीत करते थे।

इटली के कर्ता-धर्ता मुसोलिनी 'मेरे चौबीस घंटे, (My Twenty-four Hours) शीर्षक एक लेख में कहते हैं:— "मेरा सवेरे का कलेवा नित्य एक गिलास सादे दूध का होता है और इसे पीने में मुझे मुश्किल से एक मिनट लगते हैं। दूध एक आश्चर्यजनक पौष्टिक पदार्थ है। कदाचित् मनुष्य के ज्ञान भर में सबसे बढ़िया वस्तु यही है। यही एक गिलास दूध मुझमें इतनी अधिक शक्ति भर देता है कि मैं दोपहर के भोजन-काल तक पूरे छः घंटे जमकर अच्छी तरह काम कर सकता हूँ।"

भारतवासियों के लिए दूध की आवश्यकता

भारतवर्ष में अधिकांश लोग शाकाहारी हैं। अतएव भारतवासियों के लिए दुग्ध-सेवन की आवश्यकता विशेष रूप से है। किन्तु दुःख का विषय है कि इसी देश में इस समय दूध का सबसे भारी अकाल दिखाई देता है। इंगलैंड, न्यूज़ीलैंड, अथवा डेनमार्क आदि देशों में हमारे यहाँ से दूध का भाव सस्ता है। बम्बई शहर में जिस भाव पर दूध बिकता है उससे अधिक सस्ता दूध लंदन शहर में मिल सकता है। इसीके साथ यदि हम अपने देश की ग़रीबी और उन देशों की अमीरी का भी विचार करें तब हमें अपने यहाँ के दूध की महँगाई का भली भाँति अंदाज़ा लग सकता है। जिस देश में अधिकांश लोगों को मुश्किल से केवल एक समय सूखी रोटी नसीब होती हो वहाँ इतना

महँगा दूध भला कितने आदमी पी सकते हैं। अस्तु, यही कारण है कि हममें से अधिकतर लोग क्षीणांग और दुर्बल दिखाई देते हैं, जिनके शरीर में बीमारियों को रोकने की शक्ति ही नहीं रह गयी है और जो नित्य नयी-नयी बीमारियों के शिकार हुआ करते हैं। बच्चों की मृत्यु-संख्या तो यहाँ देखकर हृदय काँप उठता है। संसार भर में एक भी देश ऐसा नहीं हैं जहाँ के बच्चे इस भयंकर रीति से मृत्यु के ग्रास बना करते हों। रिपोर्ट देखने से जान पड़ता है कि कहीं-कहीं इस देश में प्रति सहस्र पीछे छः छः सौ बच्चे जन्मते ही मृत्यु की भेंट होजाते हैं।

अतएव इस देश के लिए शुद्ध और सस्ते दूध की पैदावार बढ़ाने का प्रश्न वास्तव में एक जीवन और मरण का प्रश्न है। संसार के प्रायः सभी सभ्य देश अपने अपने यहाँ के भोजन में पौष्टिकता की वृद्धि करने के लिए भाँति-भाँति के आयोजन किया करते हैं, किन्तु दुःख की बात है कि हमारा ही एक ऐसा देश है जो इन बातों में सब से अधिक पिछड़ा हुआ है। सर राबर्ट मैकारिसन साहब अपने 'Food' नामक ग्रन्थ में हमारी दूध की आवश्यकता पर लिखते हैं:—

"The greatest nutritional need of India at the present time is the production of more and purer milk, for there is no more important food-stuff than this and none on which the public health is more dependant"

अर्थात् "भारतवर्ष में पौष्टिक-खाद्य-सम्बंधी सबसे भारी आवश्यकता इस समय दूध को शुद्ध और अधिक प्रचुरता के साथ उत्पन्न करने की है, कारण कि इससे बढ़कर महत्वपूर्ण खाद्यवस्तु और कोई

नहीं है और न किसी दूसरी वस्तु पर इतना अधिक जनता का स्वास्थ्य ही निर्भर है।

सन् १९२६ में भारतवर्ष की कृषि सम्बंधी एक रायल कमीशन की बैठक में यहाँ के हेल्थ कमिश्नर से साक्षी लेते हुए जो प्रश्नोत्तर किये गये थे उसमें भी यहाँ की दूध की आवश्यकता पर अत्यधिक ज़ोर दिया गया था। ये प्रश्नोत्तर इस प्रकार हुए थे :—

प्रश्न—क्या आप दुग्ध-सेवन के इस प्रश्न पर कुछ अधिक प्रकाश डाल सकते हैं ? क्या आपकी राय में यहाँ की देहाती जनता के लिए दूध की प्राप्ति अत्यंतावश्यक है ?

उत्तर—जी हाँ, मेरा ऐसा ही विचार है। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि जिन लोगों में दूध का व्यवहार अधिकता के साथ किया जाता है उन्हें इससे बड़ा लाभ होता है।

प्रश्न—क्या दूध का वितरण यहाँ कुछ भौगोलिक रीति पर है ? क्या आप कहते हैं कि भारतवर्ष में कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ काफ़ी दूध मिलता है और कुछ ऐसे हैं जहाँ दूध नहीं मिलता ?

उत्तर—मैं नहीं समझता कि इसमें ज़रा भी संदेह हो सकता है कि यहाँ के कुछ लोगों में दूध की खपत दूसरे भागों की अपेक्षा अधिकता के साथ होती है। जिसका अर्थ यह है कि वहाँ दूध अधिकता से मिलता है। उदाहरणार्थ पंजाब के सिक्ख लोग दूध का व्यवहार साधारण तौर पर काफ़ी मात्रा में किया करते हैं।

प्रश्न—और इसका प्रभाव भी उनके शरीर और स्वास्थ्य पर अच्छा पड़ता है ?

उत्तर—यह तो हम उन्हें देखकर ही जान सकते हैं।

प्रश्न—जो जिन लोगों की आर्थिक अवस्था ऐसी न हो कि वे बहुत तरह का भोजन कर सकें उनके लिए आपकी राय में दूध

सबसे बढ़िया ख़ूराक है और दूध की पैदावार में उन्नति ही भारत के लिए सबसे आवश्यक प्रश्न है ?

उत्तर—बहुत ही आवश्यक प्रश्न है।

अस्तु, दूध की आवश्यकता इस देश के लिए सब स्वीकार करते हैं और सभी की राय में दूध की उत्पत्ति बढ़ाना यहाँ के लिए नितांत आवश्यक है। किन्तु प्रश्न उठता है कि यह उत्पत्ति किस प्रकार बढ़ाई जा सकती है। हमारी समझ में दूध की कमी के जितने कारण इस देश में हो सकते हैं उनमें से मुख्य-मुख्य कारण संक्षेप में इस प्रकार लिखे जा सकते हैं:—

(१) दूध देने वाले अथवा गर्भ धारण करने योग्य पशुओं की अबाध हत्या।

(२) देश में चारे की कमी। और उस पर भी खली इत्यादि दूध बढ़ाने वाली बहुमूल्य वस्तुओं का बाहर भेजा जाना। लगभग तीन लाख टन खली यहाँ से हर साल बाहर भेजी जाती है।

(३) गोचर भूमि का अभाव। आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, इंगलैंड, स्विट्ज़रलैंड, हालैंड तथा अमेरिका आदि देशों में जो दूध का कारबार इतना अधिक बढ़ गया है उसका प्रधान कारण यह है कि इन देशों में गायों के चरने के लिए बहुत काफ़ी ज़मीन मिलती है। उदाहरणार्थ इंगलैंड में जहाँ की एक-एक इंच भूमि बहुमूल्य समझी जाती है, खेती के योग्य जितनी ज़मीन है उसका आधा भाग पशुओं के चरने के लिए छोड़ दिया गया है। और शेष आधे भाग में खेती की जाती है, जैसा कि नीचे के उद्धरण से मालूम होता है:—

"The total acrage of the United Kingdom amounts to 77,500,000, and of these we have 46000,000 under all kinds of crops, bare, fallow, and

grass, and out of these 46000,000, there are 23000,000 acres of permanent pasture, meadow or grass, exclusive of health or mountain land." (Vide "Cattle, Sheep And Deer"—by Macdonald, page 13).

अर्थात्—"ग्रेट ब्रिटेन में कुल ७ करोड़ ७५ लाख एकड़ भूमि है। इसमें से ४ करोड़ ६० लाख एकड़ भूमि में सब प्रकार की फ़सलें बोई जाती हैं, जिसमें से आधी भूमि अर्थात् २ करोड़ तीस लाख एकड़ भूमि पर्वत इत्यादि के अलावा पशुओं के चरने के लिए स्थायी रूप से छोड़ दी गई हैं।" इसी प्रकार न्यूज़ीलैंड में २,७२००००० एकड़ भूमि चारे के लिए छोड़ी गई है*। जर्मनी में भी २,१३,६७,३०० एकड़ भूमि घास, गोचारण और गोष्ठ के लिए अलग कर दी गयी है। अमेरिका की तो बात ही न्यारी है। वहाँ तो एक-एक आदमी के पास मीलों ज़मीन गाय चराने के लिए मौजूद है। उदाहरणार्थ एल. सलिवन (L. Sullivan) नामक एक व्यक्ति के पास ८ वर्ग मील अर्थात् ४०,९६० एकड़ ज़मीन मौजूद है, जिसमें उसकी ३२ गोशालायें क़ायम हैं। इस प्रकार उसकी एक-एक गोशाला के लिए १२८० एकड़ भूमि चरने को मिलती है†। गायें भी वहाँ के रोज़गारियों के पास एक-दो नहीं, बल्कि बीस-बीस, पचीस-पचीस हज़ार की संख्या में रहती हैं। टेक्सस प्रान्त के एक जान हिटसन नाम के ग्वाले के पास तो ५०,००० तक गायें मौजूद हैं। अस्तु हमारे देश में अधिक न सही तो कम से कम हर गाय या भैंस पीछे एक-एक बीघा ज़मीन भी चरी के लिए छोड़ दी जाती तो भी बुरा न होता।

---

*The area of the dominion is 104751 sq. miles or 67040640 acres, of which 28000000 acres agricultural land and 27200000 acres pastoral land."

(Vide, Standard Cyclopedea of Modern Agriculture, Vol. 9, page 88.)

†"In the U. S. A. .... there are vast tracts devoted to cattle-raising. The New York Tribune, discoursing on farming in the West, mentions that "Mr. L. Sullivan has, in Livingstone country, Illinoise, a farm 8 miles square, containing 40,960 acres (64 sections Government Survey), This great area is subdivided into 32 farms of 1280 acres each. Each farm has a Captain and first and second Lieutenants all under the control of a Commander-in-Chief."

"Speaking of the immense scale in which cattle-raising is carried on in Taxas, it is stated that among the large cattle-raisers are John Hittson, who has 50,000 head of cattle, William Hittson, who had 8000, George Beavers 6000, Charles Beavers 10,000, James Brown 15000, Robert sloans 12,000, Coggins and Parks 20,000, Martin Childers 10,000 and John Chesholm 30,000. The entire number of cattle owned in Texas is nearly 40,00000".

(Vide Macdonald's Cattle, Sheep & Deer, page 194 and 195).

(४) बढ़िया जाति के साँड़ों का अभाव।

(५) गोपालन सम्बंधी शिक्षालयों की कमी।

(६) दूध के व्यवसाय के प्रति शिक्षितों और धनी व्यापारियों की उदासीनता।

(७) पशु-चिकित्सालयों की कमी।

उपरोक्त कारणों में से यदि हर एक पर लिखा जाय तो उससे एक अलग ग्रंथ तैयार हो सकता है। अस्तु, हमने यहाँ केवल इनके नाममात्र गिना दिये हैं। इन्हीं कारणों को दूर करने से इस देश में दूध का अकाल मिट सकता है।

इसके अतिरिक्त दूध में शुद्धता और स्वच्छता लाने के लिए भी देश में कड़े निमयों के बनने और उन नियमों का कड़ाई के साथ पालन कराने की अत्यन्त आवश्यकता है। अमेरिका में दूध की शुद्धता पर सबसे अधिक ज़ोर दिया जाता है। वहाँ ग्राहकों को सदैव स्वच्छ और निर्दोष दूध मिलने के लिए सरकार ने बड़ा भारी प्रबंध कर रक्खा है। किन्तु हमारे देश में इस प्रश्न पर अब तक कोई भी ध्यान नहीं दिया जाता। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा म्युनिसिपैलिटियाँ सब इस ओर से उदासीन हैं। संतोष का विषय इतना ही है कि जब से भारत के वर्तमान वाइसराय लार्ड लिनलिथगो साहब यहाँ आये हैं तब से दूध के प्रश्न पर कुछ विशेष रूप से दिलचस्पी दिखाई जाने लगी है। जहाँ तहाँ दूध की आवश्यकता पर ज़ोर दिया जा रहा है। दूध की उत्पत्ति बढ़ाने की भी कुछ-कुछ चिन्ता होने लगी है। गोजाति की उन्नति के लिए देहातों में अच्छी-अच्छी जाति के साँड़ भी बाँटे गये हैं। 'Drink more milk' अर्थात् 'अधिक दूध पियो' का

आन्दोलन भी पत्र पत्रिकाओं में सुनाई देने लगा है। अभी हाल में समाचार आया था कि कलकत्ता कारपोरेशन ने एक समिति बैठायी है जो इस बात की जाँच कर रही है कि कलकत्ते की जनता के लिए स्वच्छ और शुद्ध दूध की प्राप्ति किन उपायों द्वारा की जा सकती है। अस्तु, लक्षण अब अनुकूल दिखाई देने लगे हैं। यदि इसी प्रकार जागृति बढ़ती गयी तो कुछ दिनों में आशा है दूध की कठिनाई बहुत कुछ इस देश से मिट जायगी।

तीसरा अध्याय

दूध को उत्पत्ति और रचना

दूध क्या है और कैसे उत्पन्न होता है ?

दूध सबने देखा है। यह सफ़ेद रंग का अपारदर्शक एक तरल पदार्थ है, जो हर एक स्तनपायी (Mammalia-class) मादा जानवर के स्तन से निकलता है और जिसे पीकर बच्चा जीता और बढ़ता है। यह स्वाद में कुछ-कुछ मीठापन लिये हुए होता है और इसकी प्रतिक्रिया शरीर में क्षारात्मक (Alkaline) होती है।

दूध की उत्पत्ति मादा के स्तन में एक विशेष प्रकार की ग्रंथियों से होती है जिन्हें हम दुग्ध-ग्रंथियों (Mammary glands) के नाम से पुकारते हैं। ये दुग्ध-ग्रथियाँ किसी की छाती में रहती हैं, किसी के पेड़ू में, और किसी-किसी जानवर की छाती से लेकर पेड़ू तक फैली रहती हैं। इनकी संख्या भी किसी जानवर में दो, किसी में चार और किसी में इससे भी अधिक होती हैं। घोड़ा या बकरी के पेड़ू में केवल दो ग्रंथियाँ रहती हैं। गाय या भैंस के चार होती हैं। किसी-किसी में छः तक भी देखी गयी हैं। बिल्ली और कुतियों में छः से दस तक, और सुअरियों में दस से लेकर चौदह ग्रन्थियाँ तक होती हैं। जिन जानवरों में अधिक ग्रंथियाँ होती हैं उनमें ये छाती के निचले भाग से लेकर पेड़ू तक फैली रहती हैं। यद्यपि दूध की ये ग्रंथियाँ केवल स्त्री जाति के जीवों में ही होती हैं, किन्तु चिन्ह रूप से ये पुरुष जाति में

भी विद्यमान रहती हैं, और कभी-कभी तो उनमें ये विकसित होकर दूध तक पैदा करने लगती हैं।

दूध की उत्पत्ति भली भाँति समझने के लिए पहले स्तनों की बनावट पर ध्यान देना होगा। अस्तु, नीचे हम गाय के स्तनों की बनावट का वर्णन संक्षेप में देते हैं।

गाय के स्तनों की रचना

गाय का स्तन चार भागों में बँटा रहता है। यद्यपि ये चारो भाग एक ही खाल के अन्दर एक साथ तंतुओं के द्वारा सम्बद्ध रहते हैं, किन्तु उनका कार्य बिल्कुल एक दूसरे से स्वतंत्र और अलग-अलग हुआ करता है। प्रत्येक भाग की चूँची (Teat) भी बाहर की ओर अँगुलियों के आकार में अलग-अलग निकली रहती है, जिसमें छेद रहता है और जिसे मुँह से दाब कर बछड़ा दूध पिया करता है, या हाथ से दबा कर ग्वाले लोग दूध दुहते हैं।

स्तन में प्रत्येक भाग की केवल चूँचियाँ ही अलग-अलग नहीं होतीं, बल्कि उनकी सारी दुग्ध-प्रणाली भी अलग हुआ करती है। स्तन की ये चारो चूँचियाँ वास्तव में दूध की नालियाँ हैं, जिनमें से होकर दूध बाहर को निकलता है। हर एक नाली के ऊपरी सिरे पर एक-एक दुग्धाशय (milk-cistern) रहता है जिसमें दूध भरा रहता है। ये चूँचियाँ ऊपर से नीचे तक आप से आप सिकुड़ने वाली मांस-पेशियों से छल्ले के रूप में घिरी रहती हैं, जिनके सिकुड़ने से नालियों का मुँह दब कर बंद हो जाया करता है और दूध बाहर गिरने नहीं पाता। जब ग्वाला चूँची को ऊपर से दबाता है तो दूध का दबाव पाकर नीचे की मांस पेशियाँ फैल जाती हैं और नाली का मुँह खुल कर दूध की धार तेज़ी से निकल पड़ती है।

दुग्धाशय का स्थान हर एक चूँची के ठीक ऊपरी सिरे पर रहा करता है। और दूध की नाली का सिरा उससे जुड़ा रहता है। किसी गाय का दुग्धाशय बड़ा होता है और किसी का छोटा। किन्तु बड़े से बड़े दुग्धाशय में भी दूध दस छटाँक (या एक पाइंट) से अधिक नहीं समा सकता। हर एक दुग्धाशय से निकल कर ऊपर की ओर स्तन में चारों तरफ़ छोटी-बड़ी अन्य दुग्ध-नालियों (milk-ducts) की एक प्रणाली सी फैली रहती है, जिनका मुँह दुग्धाशय में आकर खुलता है। दुग्धाशय के पास इन नालियों का मुँह कुछ चौड़ा रहता है, किन्तु जैसे-जैसे ये स्तन में ऊपर की ओर को जाती हैं, इनका आकार पतला पड़ता जाता है और इनमें से अन्य कितनी ही शाखाएँ निकल-निकल कर ऊपर की ओर फैलने लगती हैं। इन नालियों और शाखाओं के मुँह में चारों ओर ऐच्छिक मांसपेशियाँ (Voluntary muscles) जुड़ी रहती हैं, जिनके द्वारा गाय जब चाहे नाली का मुहँ बंद करके दूध को थन में रोक सकती है।

साधारण पाठकों को ऐच्छिक और अनैच्छिक मांसपेशियों का अंतर समझने में कदाचित् कुछ कठिनता जान पड़े, इसलिए संक्षेप से हम उसे भी यहाँ समझा देना चाहते हैं। शरीर के किसी भी भाग का संचालन केवल मांसपेशियों ही के द्वारा हो सकता है। हाथ-पैर हिलाना, मुँह चलाना, नाक सिकोड़ना, आँखें खोलना या मूँदना, भौंह तानना इत्यादि सारे काम स्थानीय मांसपेशियों ही को संचालित करने से हुआ करते हैं, और इन्हें हम अपनी इच्छा के अनुसार जब चाहे संचालित कर सकते हैं। इसलिए ऐसी मांसपेशियों को ऐच्छिक मांसपेशियाँ (Voluntary muscles) कहते हैं। इनसे भिन्न बहुत सी ऐसी मांसपेशियां भी हमारे शरीर में हैं जिन पर हमारा कोई वश नहीं है। उनका काम आपसे आप हुआ करता है। उदाहरणार्थ

हृदय का संचालन अनैच्छिक मांसपेशियों (Involuntary muscles) के द्वारा होता है। इसी प्रकार पेट और अँतड़ियों का काम भी अनैच्छिक मांसपेशियों ही के द्वारा होता है। इनपर हमारा कोई वश नहीं है।

गाय के थन में फैली हुई दुग्धनालियों के मुँह में जो मांसपेशियां रहती हैं वे ऐच्छिक हैं। अतएव कभी-कभी गाय उनके द्वारा नालियों का मुँह बंद कर के बहुत सा दूध ऊपर ही थन में रोक लेती है। इस प्रकार दूध रोक लेने का स्वभाव और शक्ति भिन्न-भिन्न गायों में भिन्न भिन्न रूप से हुआ करती है। किन्तु बहुत थोड़ी गायें ऐसी मिलेंगी जो सम्पूर्ण नालियों का दूध एक साथ रोक सकती हों। साधारणतः पतली-पतली शाखानालियों का दूध छोटे-मोटे कारणों से भी गायें रोक लिया करती हैं, किन्तु मोटी या बड़ी नालियों का दूध बहुत कम गायें रोक सकती हैं, और वह भी किसी भारी कारण के उपस्थित होजाने पर ही रोकती हैं। सर्दी-गर्मी, बुख़ार, संकट, किसी अजनबी मनुष्य या पशु का पास खड़े रहना, खिलाई-पिलाई या दूध दुहने के ढंग में परिवर्तन इत्यादि ऐसे कारण हैं जिनसे गाय बहुधा दूध को रोक लिया करती है। जहां तक संभव हो गाय को इस प्रकार दूध रोकने की आदत कदापि न पड़ने देना चाहिये। एक बार यह आदत पड़ जाने से फिर उसका छूटना असंभव होजाता है। थन में दूध के रुके रहने से एक बड़ी हानि यह होती है कि उसमें नया दूध भी बहुत कम बनने पाता है और धीरे-धीरे गाय की दूध देने की शक्ति ही घट जाती है।

दुग्धनालियों की तमाम पतली और बारीक शाखाएँ थन के ऊपरी भाग में पहुँच कर दूध की ग्रंथि (milk-glands) के साथ जुड़ जाती हैं। यह ग्रंथि या थैली बहुत से छोटे-छोटे दानेदार झुण्डों से

मिल कर बनी होती है। हरएक झुप्पे में तीन से लेकर पांच दाने (acini) तक होते हैं, जिनका मुँह एक साथ मिलकर दूध की एक-एक नाली के सिरे से जुड़ा रहता है। झुप्पे के हर एक दाने का आयतन (diameter) $\frac{1}{30}$ इंच के लगभग होता है। बस, इन्हीं दानों (acini) के अंदर परमाणुओं (cells) द्वारा दूध की उत्पत्ति हुआ करती है। यहीं से दूध बन कर बारीक नालियों द्वारा मोटी नालियों में पहुँचता है और फिर दुग्धाशय में भर कर चूँचियों द्वारा बाहर निकलता है। प्रायः दूध का अधिकतर भाग दुहने के समय ही बना करता है।

दुग्धग्रंथि में दूध पैदा करने वाले ये दाने (acini) भिन्न-भिन्न गायों की शक्ति, अवस्था, स्वास्थ्य एवं जाति के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप-रंग और शक्ति के होते हैं तथा उनका विकास भी उसी प्रकार कम या अधिक होता है। एक ही गाय में भी समयानुसार इन दोनों के रूप-रंग, शक्ति और विकास में बहुत कुछ परिवर्तन देख पड़ता है। जब तक गाय पूरी तौर से दूध देती रहती है तब तक ये दाने बड़े, विकसित और उभरे हुए जान पड़ते हैं। जब दूध देना कम कर देती है या बिल्कुल ही बंद कर देती है तब ये दाने भी सिकुड़ कर बिल्कुल छोटे हो जाते हैं। कभी-कभी तो ये केवल चिन्हमात्र रह जाते है अथवा ग़ायब ही हो जाते हैं। दूध की नालियां भी इस समय मुर्झा कर बिल्कुल पतली पड़ जाती हैं। यह अवस्था उस समय तक रहती है जब तक कि गाय फिर गाभिन नहीं होजाती है। गाय के गाभिन होते ही उनमें फिर से चेतनता आ जाती है। और धीरे-धीरे वे पुनः अपने पूर्वरूप को धारण करने लगती हैं। ग्रंथियों में दाने मोटे होकर उभड़ने लगते हैं और उनमें ताज़गी-सी आजाती है। प्रसव काल आने तक ये ग्रथियां पूर्ववत् विकसित हो जाती हैं।

और उनमें पहले ही की तरह दूध पैदा होने लगता है।

गर्भ-काल में ही ये ग्रंथियां क्यों सचेत होती हैं पहले क्यों नहीं हुआ करतीं, इसका कारण यह जान पड़ता है कि जिस समय बच्चा गर्भ में आता है उसी समय बच्चे को पोषण पहुँचाने के लिए गर्भाशय में रुधिर अधिक परिमाण में दौड़ने लगता है। अतएव गर्भाशय से लौटता हुआ यही रुधिर दूध की ग्रंथियों और नालियों में भी भर जाता है जिससे वे सचेत हो उठती हैं और अपना काम करने लगती हैं। किन्तु इस विषय में विद्वानों में मतभेद है।

दूध कैसे बनता है

दूध की ग्रंथियों और नालियों से लगी हुई, उनकी झिल्लियों और दीवारों के भीतर होकर बहुत सी रक्त की शिराएँ (शुद्ध रक्त को लानेवाली और दूषित रक्त को लेजानेवाली दोनों प्रकार की शिराएँ) दौड़ती हैं। रक्त का बहुत सा सिरम (serum) नामक जलीय अंश इन्हीं दीवारों में सोख कर (by transudation) ग्रंथियों के अंदर पहुँचता है। वहाँ इस सिरम के साथ ग्रंथि के अंदर रहने वाले सेलों (cells) अर्थात् जीवित परमाणुओं द्वारा दूध तैयार किया जाता है।

सिरम के साथ उसमें घुले हुए तमाम खनिज पदार्थ, एल्बुमिन तथा जल-भाग ग्रंथि में पहुँचते हैं, जिससे दूध का क्रमशः क्षारभाग, केसइन तथा जल का अंश तैयार होता है। दूध की शर्करा तथा घी का अंश संभवतः सेलों (अर्थात् जीवित परमाणुओं) के शरीर से प्राप्त होता है। इनका शरीर प्रोटोप्लाज़्म (protoplasm) नामक द्रव्यविशेष का बना होता है। जिन दिनों गाय दूध देती रहती है उन दिनों इन परमाणुओं में बेहद सचेष्टता आजाती है।

क्षण-क्षण में इनकी संख्या अद्भुत शीघ्रता के साथ बढ़ती जाती है। हर एक सेल के शरीर का प्रोटोप्लाज़्म पहले बढ़ कर लम्बा हो जाता है। तत्पश्चात् बीच से पतला होकर डमरूनुमा बन जाता है। फिर उसी पतले भाग से अलग होकर उसके दो टुकड़े हो जाते हैं जिससे एक-एक सेल के स्थान में दो-दो सेल तैयार होजाते हैं। अब उसी प्रकार विभक्त होकर दो-दो की जगह चार-चार सेल, और फिर उनसे आठ-आठ सेल पैदा होजाते हैं। इस प्रकार उनकी संख्या बराबर तेज़ी के साथ प्रतिक्षण बढ़ती जाती है। साथ ही उनके शारीरिक तत्वों में भी रासायनिक परिवर्तन होता रहता है, जिससे दूध की चर्बी और चीनी का अंश बराबर बनता जाता है। इस प्रकार दूध का सम्पूर्ण अंश बन जाने से दूध तैयार हो जाता है। जिस समय दूध दुहा जाता है उस समय यह कार्य बड़ी तेज़ी के साथ हुआ करता है। अतएव बहुत कुछ दूध दुहने के समय ही तैयार होता है।

दूध में कौन-कौन से पदार्थ मिले हैं

रासायनिक विश्लेषण द्वारा दूध में निम्नलिखित मुख्य-मुख्य पाँच चीज़ें पाई जाती हैं :—

(१) जल।
(२) चर्बी।
(३) प्रोटीन या नेत्रजन वाला भाग।
(४) दूध की चीन (milk-sugar)
(५) क्षार (ash)

इनके अतिरिक्त कितनी ही अन्य वस्तुएँ भी उसमें सूक्ष्म रूप से मिला करती हैं जैसे:—(१) दूध में सफ़ेदी लानेवाले ल्यूकोसाइट्स

अर्थात् श्वेताणु; (२) दूध में भिन्न-भिन्न प्रकार का स्वाद एवं गंध लानेवाले तत्वविशेष, जो वस्तुतः जानवर की प्रतिदिन की खाई हुई वस्तुओं से प्राप्त होते हैं; (३) कुछ विशेष प्रकार की प्रोटीड के अंश (lactoproteid) जो अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं; (४) क्रियेटिनाइन (kreatinine); (५) यूरिया (urea); (६) एल्कोहोल (alcohol); (७) फ्लूराइड इत्यादि नाम की कितनी ही अन्य वस्तुएँ जो न्यूनाधिक मात्रा में प्रायः सभी जाति के दूधों में मिला करती हैं।

ये सारी वस्तुएँ दूध के जल भाग में घुली अथवा मिली हुई रहती हैं। कुछ अर्धघुली अवस्था में भी रहती हैं, जैसे केसइन, एल्बुमेन इत्यादि, किन्तु इन सबों का मिश्रण कुछ ऐसी दैवी कारीगरी के साथ रहता है जो अब तक वैज्ञानिकों की समझ में नहीं आसका। कितने ही विद्वानों ने दूध के इन सब पदार्थों को निश्चित मात्रा में लेकर भरसक मिलाने का प्रयत्न किया परन्तु स्वाभाविक दूध न पैदा हो सका।

अस्तु, अब हम उपरोक्त मुख्य पाँच पदार्थों में से जल को छोड़ शेष चारों का वर्णन संक्षेप से नीचे देते हैं।

चर्बी

दूध में चर्बी का अंश अत्यंत सूक्ष्म बूँदों के रूप में इमल्शन (emulsion) की तरह मिला रहता है। यह चर्बी कोई एक तत्व नहीं है, बल्कि कई प्रकार की चिकनाइयों का सम्मिश्रण है। साधारण दूध में इनकी संख्या ६ से लेकर ९ तक पाई जाती है❀। किन्तु विशेष

❀इन चिकनाइयों के नाम हैं:—(1) Butyrin, (2) Caproin, (3) Caprylin, (4) Caprin (5) Laurin (6) Myristicin, (7) Palmitin, (8) Stearin, (9) Olein,

अवस्थाओं में यह संख्या बहुत अधिक बढ़ सकती है। वैज्ञानिक लोग इन्हें दो भागों में विभक्त करते हैं :— (१) चलनशील (Volatile) ; (२) अचलनशील (non-volatile)

चलनशील चिकनाइयाँ—इनका परिमाण कुल चर्बी भाग में १५ फ़ी सदी रहता है। इनकी उत्पत्ति पशु के दैनिक भोजन से हुआ करती है। अतएव उसके भोजन का स्वाद और सुगंध तैलांश रूप में इन्हीं के साथ मिलकर दूध में पहुँचते हैं। उदाहरणार्थ गाय को नीम की पत्ती या भाँग खिला देने से उसके दूध का स्वाद कडुआ हो जाता है, तथा लहसुन, प्याज, शलजम अथवा मूली दे देने से उसके दूध में इन्हीं वस्तुओं की गंध आजाती है। परन्तु यदि हम ज़रा चतुराई से काम लें तो ये गंध अथवा स्वाद दूध में से बिल्कुल मिटा दिये जा सकते हैं। बात यह है कि उपरोक्त चिकनाइयों में जो तैलांश इन वस्तुओं का स्वाद अथवा गंध लिए हुए रहता है वह चलनशील होने के कारण कुछ ही समय में दूध में से निकल कर मूत्रादि मार्गों द्वारा बाहर होजाता है। अस्तु, यदि दूध दुहने के दस बारह घंटे पूर्व गाय को प्याज़ इत्यादि खिलाया जाय तो उसकी गंध दूध में ज़रा भी न जान पड़ेगी। किंतु दो ही तीन घंटे पहले इन चीज़ों को खिला कर दूध दुहने से उसकी गंध अवश्य बहुत तेज़ मालूम होगी। योरोप में बहुत से डेयरी वाले अपनी गायों को शलजम और प्याज़ ख़ूब खिलाया करते हैं। किंतु उपरोक्त सावधानी के कारण उनके दूध का स्वाद अथवा सुगंध कदापि नहीं बिगड़ने पाता।

चलनशील चिकनाइयों में ब्यूटाइरिन (Butyrin) नाम की चिकनाई सर्वप्रधान है। दूध या मक्खन का स्वाद और सुगंध बदलने में बहुत कुछ इसी का भाग रहा करता है। जब यह पुरानी पड़ने से

किटा जाती है तो मक्खन का स्वाद और सुगंध किटाया हुआ (rancid) सा जान पड़ता है।

अचलनशील चिकनाइयाँ—इनका औसत दूध की चर्बी में ८५ फ़ी सदी रहता है जिसमें ओलीन (Olein) और पामिटीन (Palmitin) नाम की चिकनाइयों का भाग सबसे अधिक होता है। ओलीन की चिकनाई बहुत कोमल होती है और वह केवल ४७°F की गर्मी में ही पिघल जाती है। पामिटीन आदि की चिकनाइयां कड़ी और ठोस होती हैं और १२५° F तक की गर्मी में नहीं गलतीं। वस्तुतः मक्खन और घी में कोमलता या कठोरता इसी ओलीन की अधिकता अथवा न्यूनता के कारण पैदा होती है। जिस मक्खन में ओलीन का भाग जितना कम रहेगा वह उतना ही कठोर होगा। गाय के मक्खन या घी में कुछ पीलापन सा भी दिखाई देता है। यह रंग का तैल-अंश है और पामिटीन के साथ उत्पन्न होता है।

प्रोटीन

प्रोटीन या नेत्रजन (Nitrogenous) भाग शरीर के मांस-तंतुओं को बनाने और बढ़ाने का काम करता है। यह दूध में दो प्रकार से मौजूद रहता है:—(१) अल्बुमिन के रूप में; और (२) केसिन के रूप में। अल्बुमिन वही वस्तु है जो अंडे के अंदर सफ़ेद पानी की तरह होता है। दूध को गरमाने से उसका अल्बुमिन जम कर मलाई के साथ ऊपर आजाता है। केसिन का अंश गरम करने से जमता नहीं, दूध में मिला रहता है। यह ताजे शुद्ध दूध में सदैव घुली हुई अवस्था में रहता है। किन्तु जब दूध फट जाता है अथवा उसमें निमक, खटाई, या (पनीर बनाने के लिए) बछड़े की आंत का सत

(Rennet) डाल दिया जाता तो यह केसिन भी जम कर थक्का हो जाता है।

दूध का अल्ब्युमिन भाग सब बातों में रुधिर के अल्ब्युमिन भाग से मिलता-जुलता है। इस पर साधारण खटाई अथवा बछड़े की आंत (rennet) का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव इसे शुद्ध केसिन से बिल्कुल अलग मानना चाहिए।

अल्ब्युमिन और केसिन के साथ थोड़े अंश में एक तीसरी वस्तु भी मिली हुई बतलाई जाती है, जिसका नाम फ़ाइब्रिन (Fibrin) है। यह एक अत्यंत सूक्ष्म रेशेदार चीज़ है जो हवा लगते ही जम जाती है। रुधिर में भी फ़ाइब्रिन का अंश विद्यमान है जिसके कारण रुधिर शरीर से बाहर होते ही हवा खाकर जम जाता है और थक्का सा बन जाता है। दूध का फ़ाइब्रिन ठीक रुधिर के ही फ़ाइब्रिन के समान है, किन्तु दूध में इसका अंश इतना सूक्ष्म रहता है कि मालूम नहीं पड़ता। कहा जाता है कि हवा से इसका रूप सारे दूध में मकड़ी के जाले की तरह बन जाता है, किन्तु अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण जान नहीं पड़ता।

दूध की चीनी—इसे वैज्ञानिक भाषा में लैक्टोज़ (Lactose) कहते हैं। यह दूध के जल भाग में घुली रहती है। गन्ने की चीनी से इसमें कई बातों में अंतर है। स्वाद में दूध की चीनी साधारण चीनी की अपेक्षा बहुत कम मीठी होती है। घुलनशीलता में भी दोनों के बड़ा अंतर है। दूध की चीनी अपने से पाँचगुने या छः गुने ठंडे पानी अथवा दुगुने या तिगुने खौलते हुए पानी के बिना नहीं घुलती। किन्तु साधारण चीनी अपने से केवल तिहाई ठंडे पानी में ही घुल जाती है और खौलता हुआ पानी तो उसके लिए बहुत ही कम चाहिए। इसके अतिरिक्त दोनों में आपेक्षिक गुरुत्व (specific

gravity) का भी भेद है। दूध की चीनी का आपेक्षिक गुरुत्व १·५२ है, किन्तु गन्ने की चीनी का १·६०६।

क्षार—दूध को सम्पूर्ण रूप से जला देने के बाद जो कुछ राख नीचे बच जाती है वही दूध का क्षार-भाग है। क्षार का अंश दूध में यद्यपि अन्य सब तत्वों की अपेक्षा बहुत ही कम होता है, तथापि इनके द्वारा क्षय इत्यादि कितना ही बीमारियों को रोकने को में बड़ी सहायता मिलती है। इसकी मात्रा में भी बहुत कम हेर-फेर होता है। उदाहरणार्थ किसी भी जाति की गाय क्यों न हो उसके दूध में क्षार का भाग लगभग एकसा पाया जायगा—अर्थात् ७ और ८ फ़ी सदी के बीच में ही होगा। अतएव इसके द्वारा दूध में पानी की मिलावट का पता आसानी से लग सकता है, कारण कि पानी मिले दूध में क्षार का भाग बहुत कम पड़ जायगा।

दूध के क्षार में कई तरह के क्षार का मिश्रण है। उनके नाम ये हैं:

(१) फ़ास्फेट आफ़ लाइम (Phosphate of Lime)
(२) फ़ास्फेट आफ़ पोटाश (Phosphate of potash)
(३) सोडियम क्लोराइड (Sodium chloride)
(४) पोटैशियम क्लोराइड (Potassium chloride)
(५) फ़ास्फेट आफ़ आयरन (Phosphate of iron)
(६) फ़ास्फ़ेट आफ़ मैग्नीशिया (Phosphate of magnesia)

इनमें से प्रथम दो के परमाणु संभवतः केसिन के साथ दूध में मिले हुए रहते हैं, घुलते नहीं किन्तु बीच के दोनों पदार्थ निमक हैं, इसलिए दूध के जलभाग में घुल जाते हैं। शेष दो पदार्थ जिनके नाम अन्त में दिये गए हैं केवल नाम मात्र को दूध में मिलते हैं।

अभी हाल में ज़बिन्दन (Zbinden) नामके वैज्ञानिक ने दूध की अत्यन्त सूक्ष्म परीक्षा करके उसमें कई प्रकार की और धातुओं

का भी पता लगाया है। इनके नाम ये हैं:—एल्मूनियम; क्रोमियम; ताँबा; शीशा; अबरक; टीन; टिटैनियम्; काँसा; और वैनेडियम। माता के दूध में चाँदी का अंश भी रहता है। इस वैज्ञानिक के मतानुसार यद्यपि उपरोक्त धातुओं का केवल चिन्ह मात्र ही दूध में मिलता है, तथापि ये उसके बलवर्धक एवं रोगनाशक गुणों को बढ़ाने में अद्भुत् शक्ति रखते हैं।

वाइटेमिन्स (Vitamins) की उपस्थिति

उपरोक्त पदार्थों के अतिरिक्त दूध में वाइटेमिन भी प्रायः सभी प्रकार के पाये जाते हैं। विशेषकर इसमें ए, डी, और ई, नामक वाइटेमिन की मात्रा अधिक रहती है। जो पशु हरी घास, सागभाजी और पत्तियाँ खाया करते हैं उनके दूध में वाइटेमिन सबसे अधिक पाया जाता है। खली, बिनौला या सूखा भूसा खाकर रहने वाले पशुओं के दूध में इतना अधिक वाइटेमिन नहीं रहता। गरम किये हुए दूध की अपेक्षा बिना गरम किये ताज़े दूध में वाइटेमिन का अंश अधिक रहता है। धारोष्ण दूध में यह अंश सब से अधिक रहता है। जैसा कि पहले बतला चुके हैं, आग की गरमी सब प्रकार के वाइटेमिन के लिए अत्यंत घातक है। अतएव स्टेरिलाइज़ (Sterilised) किए हुए दूध में यह वाइटेमिन अधिकांश में नष्ट होजाता है। बाज़ारों में सौदागरों के यहाँ जो विलायती दूध डिब्बे में जमा हुआ (Condensed milk) अथवा चूर्ण (milk powder) के रूप में मिलता है उसमें भी प्रायः वाइटेमिन बिल्कुल नहीं रहता। अतएव ऐसा दूध यदि बच्चों को पिलाना ही पड़े तो उनकी ख़ूराक में वाइटेमिन की पूर्ति अन्य प्रकार से अवश्य करनी चाहिए। इसके लिए ताज़े फलों का रस तथा थोड़ा सा 'काड' मछली का तेल (Cod liver oil) दे सकते हैं।

माता के दूध में भी वाइटेमिन की मात्रा भोजन के हिसाब से घटती बढ़ती है। जो माताएँ शाक और मांस दोनों प्रकार का आहार करती हैं उनकी अपेक्षा केवल शाकाहारी माताओं का दूध वाइटेमिन से अधिक परिपूर्ण रहता है। किन्तु जो माताएँ निरी मांसाहारी हैं उनके दूध में योरोप के प्रसिद्ध विशेषज्ञों की राय में वाटेमिन का अंश प्रायः बिल्कुल नहीं मिल सकता। अतएव गर्भकाल से ही माता के भोजन में उचित परिवर्तन कर देना चाहिए।

दूध में वाइटेमिन की यह उपस्थिति उसके स्वास्थ्य-रक्षक गुणों को बहुत अधिक कर देती है। अमेरिका के कुछ डाक्टरों की राय है कि जो लोग दूध का बिल्कुल व्यवहार नहीं करते उनमें प्रायः संतान उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रह जाती। साथही दूध के द्वारा कितने ही रोगों से भी रक्षा होती है।

दूध की रचना में भेद

साधारणतः सब प्राणियों का दूध एक ही ढंग से बनता है। जो जो पदार्थ एक प्राणी के दूध में मिलते हैं प्रायः वे ही सब पदार्थ अन्य जाति के प्राणियों के दूध में भी पाये जाते हैं। भेद केवल इन पदार्थों की मात्रा में रहता है।

किसी प्राणी के दूध में कोई तत्व अधिक पाया जाता है किसी में वह कम पाया जाता है। घोड़ी, गधी या माता के दूध में गाय के दूध से चीनी और जल का अंश अधिक रहता है, किन्तु चर्बी और प्रोटीन का अंश कम। भैंस और भेड़ी के दूध में गाय के दूध से जल का भाग कम रहता है और चर्बी का भाग ज़्यादा। कुछ समुद्री जीवों के दूध में चर्बी का भाग बहुत ही अधिक होता है और चीनी तथा जल का भाग बहुत ही कम।

कुछ समय पूर्व केनिग (Koenig) नाम के एक विद्वान् ने पृथ्वी के तमाम भागों से लगभग ८०० प्रकार के दूध मँगवा कर इकट्ठे किये थे और उनके विश्लेषण द्वारा इस बात का पता लगाया था कि दूध में हर एक तत्व अधिक से अधिक और कम से कम कितनी मात्रा में पाया जा सकता है। परिणाम जो कुछ निकला वह इस प्रकार था:—

प्रति सौ भाग दूध में	अधिक से अधिक	कम से कम
(१) पानी का भाग	९०·६९	८०·३२
(२) चर्बी " "	६·४७	१·६७
(३) केसिन "	५·६७	२·४
(४) दूध की चीनी	६·०३	२·११
(५) क्षार " "	१·२१	·३५

इससे मालूम होगा कि दूध में तत्वों की मात्रा में कितना बड़ा अंतर पड़ सकता है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इससे अधिक अंतर पड़ना असंभव है। चर्बी में तो यह अंतर सचमुच ही इससे बहुत अधिक देखा गया है। यद्यपि ऊपर लिखी मात्रा से कम चर्बी तो दूध में मुश्किल से मिलेगी, परन्तु अधिक १० फ़ी सदी तक देखी गयी है।

नीचे के आँकड़ों से भिन्न-भिन्न प्राणियों के दूध में हर एक पदार्थ की मात्रा की तुलना की जा सकती है। प्रति सौ भाग दूध में प्रत्येक पदार्थ के भाग प्रायः इस प्रकार पाये जाते हैं:—

प्राणिवर्ग	पानी %	चर्बी %	दूधकी चीनी %	प्रोटीन %	क्षार %
गाय	८७·२०	३·६०	४·७५	३·४०	०·७५
माता	८८·२०	३·३०	६·८०	१·५०	०·३०
गधो	९०·१२	१·२६	६·५०	१·६६	०·३६
घोड़ो	८८·८०	१·१७	६·८९	१·८४	०·३०
बकरी	८६·०४	४·६३	४·२२	४·३५	०·७६
भैंस	८२·६३	७·६१	४·७२	४·१४	०·९०
भेड़ी	७९·४६	८·६३	४·२८	६·६८	०·२७
हथिनी	७९·३०	९·१०	८·४९	२·५१	०·५०
सुअरी	८३·४९	४·५५	३·२३	७·२३	१·०५
कुतिया	७५·४४	९·५७	३·०९	११·१७	०·७३
ऊँटनी	८६·५७	३·०७	५·५९	४·००	०·७७
हरिणी	६९·८०	१९·००	३·००	९·७	१·५०
व्हेल मछली	६०·४७	२०·००	५·६३	१२·४२	१·४८

ऊपर के चक्र में दूध के हरएक तत्व की जो मात्राएँ दी गयी हैं वे केवल स्थूल रूप से औसत निकाल कर दी गयी हैं। इनसे यह न समझना चाहिए कि ये मात्राएँ सदैव एकसी रहती हैं, कभी घटती बढ़ती नहीं। सच तो यह है कि किसी भी एक जाति के दो प्राणियों का दूध एक सा नहीं होता।

बल्कि यों कहना चाहिए कि एक ही प्राणी के दूध में समय समय पर देश-काल, खान-पान, स्वास्थ्य और अवस्था के अनुसार बहुत कुछ अंतर दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ नीचे हम गाय के दूध पर विचार करते हैं।

जो गायें नीची ज़मीन में पानी के आसपास रहती हैं और तरी की गीली घास खाया करती हैं उनके दूध में ऊँची और सूखी ज़मीन में रहने वाली तथा सूखा भोजन पानेवाली गायों की अपेक्षा पानी का अंश अधिक होता है और चर्बी का अंश कम। इसी प्रकार बरसात के दूध में अन्य ऋतुओं की अपेक्षा पानी का भाग अधिक और चर्बी का भाग कम रहता है। प्रातःकाल और संध्या के दुहे हुए दूध में भी बहुधा अंतर देखा जाता है। संध्या के दूध में प्रातःकाल की अपेक्षा चर्बी का भाग अधिक और जल का भाग कम रहता है। कारण संभवतः यह है कि दोनों के समयांतर बराबर नहीं हुआ करते। जो दूध जितनी जल्दी दुहा जायगा उसमें पानी का अंश उतना ही कम और चर्बी का अंश उतना ही अधिक पाया जायगा। उदाहरणार्थ यदि किसी गाय को दिन में चार या पाँच बार दुहा जाय तो उसके दूध में पानी का भाग कम होकर चर्बी का भाग बहुत अधिक पाया जायगा। यह अंतर अधिकतर अवस्थाओं में, ५ प्रतिशत से लेकर २ या २½ प्रतिशत तक देखा जाता है।

एक ही समय के दुहे दूध में भी जो भाग पहले दुहा जाता है उससे पिछले या अंतिम भाग के दूध में अंतर रहा करता है। आरंभ में जो दूध निकलता है वह अपेक्षाकृत पतला होता है और उसमें चर्बी का भाग कम रहता है। धीरे-धीरे उसका पतलापन घटता जाता है और चिकनाई बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि दूध की जो अंतिम धार निकलेगी उनमें चिकनाई का भाग सर्वाधिक रहेगा। आदि और अंत के दुहे दूध में चिकनाई का यह अंतर १ से लेकर १० प्रतिशत तक पाया गया है। कारण इसका यह बतलाया जाता है कि जो दूध आरंभ में थन से निकलता है वह प्रायः बहुत देर पहले से दुग्धाशय एवं मोटी दुग्धनालियों में भरा रहता है, अतएव उसकी चिकनाई का कुछ कुछ अंश लिंफ़ों (Lymphatics) द्वारा सोख लिया जाता है। साथही जो दूध बारीक दुग्धनालियों में रहता है उसका भी तरल भाग प्रायः पहले वह आता है। घी के जो स्थूल कण उसमें मौजूद रहते हैं वे इतनी जल्दी नहीं निकल पाते। इसलिए धीरे-धीरे कर के पीछे के दूध के साथ निकलते हैं, जिससे अंत का दूध आरंभ के दूध से अधिक चिकना और गाढ़ा होजाता है।

भाँति-भाँति के खाद्य का भी दूध के गुण और परिमाण पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। ईख, गुड़ अथवा चीनी खिलाने से गाय के दूध में चीनी का अंश कुछ बढ़ जाता है। नीम की पत्ती या भांग देने से चीनी का भाग कम होकर दूध में कड़ुवापन आजाता है। खली या बिनौला देने से दूध की चिकनाई अधिक हो जाती है। इसी प्रकार कुछ ऐसे खाद्य भी हैं जिनके द्वारा दूध का परिमाण बढ़ाया जा सकता है। किन्तु इस विषय में हम आगे एक अलग शीर्षक देकर लिखेंगे। इसलिए यहाँ नहीं लिखते।

दूध में मिले हुए तमाम पदार्थों में से क्षार तथा चीनी का अंश बहुत कम घटता-बढ़ता है। अधिकतर हेर-फेर घी तथा केसिन में ही हुआ करता है। जल के भाग में भी बहुत कुछ अंतर पड़ जाता है। प्रोटीन का भाग साधारणतः चर्बी के साथ-साथ घटता या बढ़ता है। किन्तु किसी-किसी दूध में चर्बी का अंश बहुत अधिक बढ़ जाता है। प्रोटीन ऐसी अवस्था में ज़्यादा नहीं बढ़ता।

दूध के परिमाण और गुणों में गाय की जातीयता का भी बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। भारतीय गौ के दूध में योरोपीय अथवा अमेरिकन गायों की अपेक्षा घी का भाग अधिक रहता है*। किन्तु योरोप की गायें परिमाण में जितना अधिक दूध दे सकती हैं उतना भारतीय गौओं से नहीं मिलता। हमारे देश में बढ़िया से बढ़िया जाति की गाय दिन में २० या २५ सेर से अधिक दूध नहीं देती, किन्तु इंगलैंड की जर्सी जाति की कोई-कोई गाय एक मन पाँच सेर या इससे भी अधिक दूध देती हैं। भारतीय गौओं के दूध में घी का भाग अधिक होने के कारण यहाँ बहुधा सरकारी तथा फ़ौजी गोशालाओं में दूध से कुछ मक्खन अलग कर लिया करते हैं जिससे उसमें तीन या चार फ़ी सदी से अधिक चिकनाई न रहने पावे। तब यही दूध "पूर्ण स्वाभाविक दूध" (Full natural milk) के नाम से बेचा जाता है। इसी प्रकार कुछ और मक्खन निकाल कर

---

* "In England it takes twenty-five to forty pounds of milk to make one pound of butter. In India, it takes twelve to twenty four pounds of milk to make one pound of butter" (Vide "Cow Keeping In India" by Tweed page 171)

इसी दूध को माता के दूध के समान भी बनाया जा सकता है। मक्खन निकालने से दूध में प्रोटीन तथा क्षार का अंश अधिक हो जाता है, जो बच्चे की बाढ़ के लिए उपयोगी है। यदि इसी में थोड़ी सी दूध की चीनी और मिला दी जाय तो वह माता के दूध के समान हो जायगा।

भारतीय गौओं में भी कितनी ही जातियाँ हैं जिनकी दूध देने की शक्ति तथा दूध के तत्वों में बहुत कुछ भिन्नता है। अधिकतर इस देश की गायें लोगों की अज्ञानता एवं उदासीनता के कारण अत्यन्त हीनावस्था को पहुँच चुकी हैं, जिससे उनकी दूध देने की शक्ति प्रायः नष्ट सी होगयी है। कितनी ही गायें यहाँ दिन भर में एक सेर या बारह छटाँक भी दूध नहीं देतीं, जिससे उनका पालन ही भार-स्वरूप है। किन्तु सिंध, काठियावाड़ आदि देशों में अब भी ऐसी गायें मिलती हैं जो दिन भर में बीस-पचीस सेर तक दूध देती हैं और जिनका दूध साल में दस महीने या उससे भी अधिक दिन तक मिलता रहता है। नीचे के चक्र में हम भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों के गो-दुग्ध की साधारण व्याख्या देते हैं।

स्थान के नाम	आपेक्षिक गुरुत्व	ठोस भाग milk-solid	प्रोटीन	चर्बी	क्षार	चीनी	पानी
गुजरात की गायें	१·०२८	१२·४४%	३·६६	४·०२%	·७%	४·०३%	८७·५६%
अजमेर ” ”	१·०२८	१२·५५	३·६४	४·१६	७·२	४·०३	८७·४५
दिल्ली तथा पंजाब की गायें	१·०२५	१२·९५	३·६१	४·२१	·६६	४·२४	८७·०५
मैसूर की ”	१·०२७	१३·११	३·८१	४·५८	·६६	४·०३	८६·८६
निलोर ”	१·०२७	१२·७६	३·४६	४·४७	·७२	४·११	८६·२७
संयुक्त प्रांत व मध्य प्रांत की गायें	१·०३०	१२·५०	३·७०	४·०२	·६८	४·०३	८७·५०
बंगाल ” ”	१·०२५	१२·३६	३·६	४·०१	·६८	४·०१	८७·६०

अस्तु, हम देखते हैं कि दूध की परस्पर-भिन्नता के एक नहीं अनेकों कारण हैं। जानवरों की जातीयता, डील-डौल, शारीरिक बल, स्वास्थ्य, रहन-सहन, खान-पान, स्थानीय जलवायु, उनके बच्चों की आवश्यकता इत्यादि इत्यादि कितनी ही ऐसी बातें हैं जिनका प्रभाव उनके दूध पर पड़ा करता है। संभव है इनमें से कुछ बातें अपने वश की न हों, किन्तु यदि इन सब बातों को ध्यान में रख कर बुद्धि से काम लिया जाय और जानवरों की खिलाई-पिलाई एवं रहन-सहन का वैज्ञानिक ढंग से प्रबंध रखा जाय तो हर एक गाय का दूध उत्तम, अधिक और उपयोगी बनाया जा सकता है। उसके सम्पूर्ण उपयोगी तत्वों की मात्रा बहुत कुछ उन्नत की जा सकती है।

दूध के रंग में भेदः—बहुतों का विश्वास है कि गाय के दूध में कुछ पीलापन अवश्य रहता है और उसका बना हुआ मक्खन तथा घी सदैव पीले रंग का होता है। भैंस के दूध में सफ़ेदी रहती है और उसका घी तथा मक्खन बिल्कुल सफ़ेद होता है। वास्तव में लोगों के इसी विश्वास के कारण डेयरी वाले भी मक्खन में पीला रंग मिलाया करते हैं। किंतु दूध, घी या मक्खन में केवल पीलापन देख कर यह मान लेना कि यह दूध गाय का ही है निरी भूल है। पीलापन या सफेदी गाय के दूध में केवल आकस्मिक है, स्वाभाविक नहीं। जैसा कि पहले कह चुके हैं, दूध वास्तव में कई एक पदार्थों का घोल है। इसमें इन पदार्थों के सूक्ष्म कण एक प्रकार से इमल्शन के रूप में मौजूद रहते हैं। कभी-कभी ये कण बहुत ही सूक्ष्म होते हैं और कभी कोई कण बड़े भी होते हैं। अस्तु, इन कणों की बड़ाई या छोटाई के कारण दूध के रंग में बहुत कुछ अंतर पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त दूध के रंग का बहुत कुछ मसाला हरी घास या भूसा आदि से मिलता है जो गाय को नित्यप्रति खिलाया जाता है। यदि

हरा चारा या भूसा खिलाने के बजाय गाय को खली या बिनौले पर रक्खा जाय तो उसका दूध बिल्कुल सफ़ेद रंग का होगा। पीलेपन का उसमें नाम तक न रहेगा।

एक विशेषज्ञ का कहना है कि जाड़े के दिनों में जब गाय की ख़ूराक में भूसा इत्यादि के साथ खली की मात्रा बढ़ा दी जाती है तो उसके दूध में सफ़ेदी आजाती है। किन्तु गाजर, शलजम और हरी घास खिलाने से उसका दूध पोला होजाता है और साथ ही उसमें एक विशेष प्रकार की सुगंध भी पैदा हो जाती है।

वैद्यक ग्रंथों के अनुसार दूध के गुण-दोष का वर्णन

सुश्रुत, वाग्भट्ट, चरक-संहिता आदि वैद्यक ग्रंथों में दूध का वर्णन बड़े विस्तार से दिया हुआ है। नीचे हम इन्हीं के आधार पर कुछ पशुओं के दूध का संक्षिप्त वर्णन देने का प्रयत्न करते हैं।

गाय का दूध

गाय का दूध स्वाद में मधुर, स्निग्ध, शीतल, भारी, दूध की वृद्धि करनेवाला तथा वायु, पित्त एवं रक्तविकार का नाशक है। क्षय और फेफड़ों के रक्तस्राव में भी लाभकारी है तथा मल और नाड़ियों को कुछ गीला करता है। इसके नित्य-सेवन करने से शरीर की सारी व्याधियाँ दूर हो जाती हैं तथा बुढ़ापा नहीं घेरने पाता।

सफ़ेद गाय का दूध—देर से पचता है और कफ़ बढ़ाता है।

पीली गाय का दूध—वायु और पित्त को नष्ट करता है।

कृष्ण अर्थात् काली गाय का दूध—इन सबों में उत्तम होता है और वायुनाशक है।

बकरी का दूध

इसके गुण प्रायः गाय के ही दूध के समान हैं, किन्तु यह क्षय के रोगियों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है। बकरी साधारणतः कड़ुवी और चरपरी वस्तुएँ खाया करती है, चलती बहुत है और पानी कम पीती है तथा इसके अंगों में लघुता और शरीर में स्फूर्ति पाई जाती है। अतएव इसका दूध सब रोगों का नाशक कहा गया है। यह दूध शीतल, मधुर, हलका, कसैला एवं ग्राही होता है तथा भूख की वृद्धि करता है और अग्निमांद्य, खाँसी, क्षय एवं रक्तविकार में विशेष रूप से लाभकारी है।

भैंस का दूध

यह स्वाद में मधुर, कफ पैदा करने वाला, गाय के दूध से अधिक चिकना, वीर्यवर्धक, भारी, शीतल और आलस्य पैदा करने वाला है।

भेड़ी का दूध

स्वादिष्ठ, स्निग्ध, तृप्तिदायक, पित्त और कफ़ को बढ़ाने वाला तथा वायु एवं वायु से उत्पन्न खाँसी के रोगों में विशेष उपयोगी होता है।

घोड़ी, गधी आदि का दूध

जिन पशुओं के खुर बीच से फटे नहीं होते जैसे घोड़ी, गधी इत्यादि जानवरों का दूध हलका, बलकारक, स्वादिष्ठ और खारी होता है तथा वात और गठिया के रोगों में विशेष लाभ पहुँचाता है।

ऊँटनी का दूध

स्वादिष्ट, हल्का, खारी, गर्म, दस्तावर और भूख को बढ़ाने वाला होता है तथा कुष्ठ रोग, कृमि रोग, बवासीर और पेट के कई रोगों का नाशक भी है।

हथिनी का दूध

यह स्वाद में मीठा और अंत में कुछ-कुछ कसैला होता है। गुणों में यह अत्यंत पौष्टिक, धातुवर्धक, शीतल, भारी और तृप्तिदायक बतलाया जाता है तथा इसके द्वारा नेत्रों की ज्योति भी बढ़ती है।

माता का दूध

माता का दूध शीतल, मीठा और पीछे से कुछ-कुछ कसैला होता है। रोगी नेत्रों को इस दूध से धोने से विशेष उपकार होता है। यह स्वास्थ्यदायक, बलवर्द्धक, हलका और अग्नि-दीपक बतलाया गया है।

धारोष्ण दूध

स्तन से तत्काल का निकला हुआ दूध कुछ-कुछ गरम रहता है। अतएव इसे धारोष्ण दूध कहते हैं। वाग्भट्ट ने ऐसे दूध के विषय में कहा है "धारोष्णममृतोपमम्," अर्थात धारोष्ण दूध अमृत के तुल्य होता है। भावप्रकाश में भी गौ के धारोष्ण दूध के विषय में लिखा है :—

धारोष्णं गोपयो बल्यं लघुशीतं सुधासमम्।
दीपनञ्च त्रिदोषघ्नं तद्धारा शिशिरं त्यजेत्॥

अर्थात्, 'गौ का धारोष्ण दूध बलवर्धक, हलका, शीतल, अमृत के समान, अग्निदीपक तथा वायु, पित्त और कफ तीनों दोषों को नष्ट करने वाला है। किन्तु यह दूध यदि ठंडा होगया हो तो (बिना आग पर तपाये हुए) न पीना चाहिए।'

भैंस का दूध धारोष्ण पीने के लिए मना किया गया है इसलिए उसे ठंडा करके पीना चाहिए। कच्चा दूध केवल गाय और भैंस का

ही पीना उचित है अन्य पशुओं का दूध आग पर तपा कर पीना चाहिए।

कालभेद के अनुसार दूध का वर्णन

वैद्यक के अनुसार सवेरे का दुहा दूध शीतल और भारी होता है तथा देर से पचता है, कारण कि रात्रि में जिस समय पशु विश्राम लेता है उसके दूध में शीतकारक गुण उत्पन्न होजाते हैं। किन्तु संध्या काल का दूध सवेरे से हलका होता है क्योंकि जानवर को चलने-फिरने का परिश्रम करना पड़ता है और उसकी देह पर धूप तथा हवा भी लगती रहती है। इसीसे यह दूध वायु और कफ का नाशक तथा नेत्रों की ज्योति का बढ़ाने वाला बतलाया जाता है।

प्रातःकाल के दूध-सेवन से बल बढ़ता है, शरीर पुष्ट होता है और जठराग्नि दीपित होती है। दोपहर को दूध पीने से कफ़ और पित्त का नाश होता है। तथा रात्रि के समय दूध पीने से संतान की वृद्धि होती है, बुढ़ापा और क्षय रोग नष्ट होता है, तथा वीर्य भी बढ़ जाता है।

निषेध

जिस दूध में बदबू जान पड़ती हो, जिसका रंग बदल गया हो, जिसमें खट्टापन आगया हो, जो निःस्वाद हो गया हो, जिसका स्वाद नमकीन हो, अथवा जो फट गया हो वह दूध स्वास्थ्य के लिए हानि-कारी होता है। अतएव ऐसा दूध कदापि न पीना चाहिए।

प्रसवकाल का दूध

बच्चा पैदा होने के बाद जो दूध पहले-पहल स्तन से निकलता है वह साधारण दूध से भिन्न होता है। अंग्रेज़ी में इसे कलोस्ट्रम

(Colostrum) के नाम से पुकारते हैं। यह पीने के अयोग्य समझा जाता है। साधारण दूध की अपेक्षा इसमें चीनी और पानी का अंश कम रहता है; और क्षार तथा प्रोटीन का भाग बहुत अधिक होता है। चर्बी का अंश कभी कम रहता है, कभी ज़्यादा। साथही इसमें एक विशेष प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु भी पाये जाते हैं जिन्हें कलोस्ट्रम के जीवाणु (Colostrum Corpuscles) के नाम से पुकारते हैं और जो कदाचित् दुग्धग्रंथि से निकले हुए मल के अंश होते हैं।

दूध की तरह कलोस्ट्रम के तत्व भी सदा एक सी मात्रा में नहीं पाये जाते। किसी में कोई तत्व अधिक मात्रा में होता है, किसी में कम मात्रा में। नीचे के आँकड़ों में हर एक तत्व की अधिक से अधिक और कम से कम मात्रा जो इस प्रकार के दूध में अब तक देखी गई है, दी जाती है :—

प्रति सौ भाग दूध में	अधिक से अधिक मात्रा	कम से कम मात्रा
पानी का भाग	७४·५१	७२·३६
चर्बी ,, ,,	६·३२	१·३०
चीनी ,, ,,	२·१७	१·५२
अल्बुमिन ,,	२३·७०	१४·६१
क्षार ,, ,,	१·०६	१·०६
टोटल	१००·००	१००·००

प्रसव के दूध में, जैसा कि ऊपर की तालिका से मालूम होगा, अल्बुमिन का भाग इतना अधिक रहता है कि गरम करते ही वह जम कर थक्का हो जाता है। वास्तव में यही एक साधारण पहचान भी है जिससे मालूम पड़ता है कि दूध अभी काम लायक़ नहीं है। बजतक उसमें इस प्रकार जमने का स्वभाव बना रहता है, तब तक

वह काम लायक़ नहीं समझा जाता। ऐसे दूध को पीना या उसकी रबड़ी, मलाई अथवा खोवा बना कर खाना कदापि उचित नहीं। साधारणतः पाँच या छः दिन बाद दूध में जमने का स्वभाव जाता रहता है और धीरे-धीरे उसमें साधारण दूध की सी अवस्था आने लगती है। किसी में यह अवस्था जल्दी आती है, किसी में देर से। यह हर एक प्रसूता की शारीरिक अवस्था पर निर्भर है। यदि प्रसूता को कुछ ज्वर रहता हो अथवा उसके स्तनों में प्रदाह उत्पन्न होगया हो तो उसका दूध बहुत देर में शुद्ध होगा। हिन्दुओं में साधारणतः गाय का दूध प्रसव से बारह दिन बाद पिया जाता है और यह रीति ठीक भी है। किन्तु विशेष अवस्था में जब कि गाय का स्वास्थ्य ठीक न हो तो बारह दिन में भी उसका दूध शुद्ध न होगा। ऐसी अवस्था में उसका दूध जब तक बिल्कुल ठीक न हो जाय तब तक न पीना चाहिए।

दूध का आपेक्षिक गुरुत्व

(Specific gravity)

दूध के कई तत्व तौल में पानी की अपेक्षा भारी होते हैं और कई तत्व हलके। प्रोटीन और चीनी भारी होते हैं, किन्तु चर्बी का अंश पानी से हलका पड़ता है। सब मिलाकर दूध का वज़न और गाढ़ापन पानी की अपेक्षा सदैव अधिक होता है। इसी को वैज्ञानिक भाषा में कहते हैं कि दूध का आपेक्षिक गुरुत्व (Specific gravity) पानी से अधिक है। पानी का गुरुत्व वैज्ञानिकों ने १ मान रक्खा है और इसी के साथ मिलान करके हर एक वस्तु का आपेक्षिक गुरुत्व बतलाया जाता है। अस्तु, दूध का आपेक्षिक गुरुत्व १·०२७ से लेकर १·०३५ तक कहा जाता है। पतले दूध का आपेक्षिक गुरुत्व कम होता है।

गाढ़े दूध का अधिक । पानी मिला देने से दूध का आपेक्षिक गुरुत्व घट जाता है । अतएव किसी दूध में कितना पानी मिला है इसके लिए उसका आपेक्षिक गुरुत्व जाँचने की रीति निकाली गयी थी किन्तु यह रीति अब, जैसा कि हम आगे बतलावेंगे, बिल्कुल निरर्थक साबित हो चुकी है । पानी के बोझ के सहारे भिन्न-भिन्न वस्तुओं का गुरुत्व मालूम करने का ढंग वैज्ञानिकों ने एक प्रसिद्ध प्राचीन गल्प के आधार पर निकाला था । यह गल्प इस प्रकार है । किसी समय एक राजा को यह धुन सवार हुई कि उसके हाथी का बोझ मालूम किया जाय । परन्तु उन दिनों आजकल की तरह ऐसी भरी भारी वस्तुओं को तौलने योग्य तराजू तो थे नहीं । अस्तु हाथी तौला कैसे जाता ? फिर भी राजाओं की धुन ही तो ठहरी । आज्ञा हुई कि जिस प्रकार सम्भव हो हाथी की तौल अवश्य मालूम की जाय और जो मनुष्य यह तौल मालूम करेगा उसे बहुत बड़ा इनाम दिया जायगा । निदान एक चतुर मल्लाह ने इस काम का बीड़ा उठाया उसने एक बहुत बड़ी नाव पर पहले हाथी को चढ़ा लिया । हाथी के बोझ से नाव का पेंदा गहराई तक पानी के नीचे चला गया । जितना हिस्सा नाव का डूबा वहां निशान लगा दिया गया । इसके पश्चात् हाथी को उतार कर नाव में बालू की बोरियां भरी गयीं, यहां तक कि नाव का जितना हिस्सा पानी में पहले डूबा था उतना ही फिर डूब गया । इसके बाद ये सब बोरियां तौल ली गयीं और हाथी का बोझ मालूम होगया । इसी दंत कथा के आधार पर वैज्ञानिकों ने पानी में बोझा नापने का एक यन्त्र बना डाला जिसे **हाइड्रोमीटर** (Hydrometer) कहते हैं ।

इस यंत्र को यदि पानी, दूध-घी, तेल आदि अलग-अलग वस्तुओं में डुबाया जाय तो जान पड़ेगा कि वह इनमें से हर एक वस्तु

में अलग-अलग गहराई तक डूबता है। हाइड्रोमीटर की इसी विशेषता के द्वारा हर एक वस्तु का आपेक्षिक गुरुत्व सरलता पूर्वक मालूम किया जा सकता है। दूध में डुबो कर उसमें पानी जांचने के उद्देश्य से जो हाइड्रोमीटर तैयार किया जाता है उसे **लैक्टोमीटर** कहते हैं।

लैक्टोमीटर (Lactometer) या दूध जाँचने का यंत्र—यह यंत्र बाज़ार में बिकता है। कुछ समय पहले लोग दूध की शुद्धता जाँचने के लिए इस यंत्र पर बड़ा भरोसा रखते थे। यह यंत्र काँच का एक साधारण मुँहबंद नली की तरह होता है। उसके एक सिरे पर गोलाकार लट्टू (bulb) लगा रहता है, जिसके भीतर पारा या शीशे की गोली रहती है। इस यंत्र को लट्टू की ओर पानी में डुबाने से जहाँ तक वह डूबता है वहाँ पर W(=Water या पानी) का चिन्ह बना रहता है। इसी प्रकार जहाँ तक वह अधिक से अधिक पतले किन्तु ख़ालिस दूध में डूबता है वहाँ M(=Milk अर्थात् दूध) चिन्ह बना रहता है। इन दोनों चिन्हों के बीच में १, २, ३ आदि गिन्तियाँ लिखी रहती हैं। पहले ऐसा माना जाता था कि किसी भी ख़ालिस दूध में, चाहे वह जितना पतला हो, यंत्र के M चिन्ह से ऊपर का भाग नहीं डूब सकता। यदि किसी दूध में M चिन्ह से ऊपर का भाग डूबा है तो अवश्य ही उसमें पानी मिलाकर पतलापन बढ़ाया गया है। अस्तु, जिस गिन्ती तक ऊपर का भाग डूबता था उतने ही अंश तक पानी की मिलावट समझी जाती थी।

इस यंत्र के कारण योरप के कितने ही दूध बेचने वालों के साथ बहुत दिनों तक अन्याय होता रहा। वहाँ हरएक ग्वाले का दूध स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारी लोग इसी यंत्र के द्वारा जाँचते थे और जो दूध इस परीक्षा में सही न उतरता था उसे क़ानून के अनुसार वहीं नालियों में उँडेल देते थे। भारतवर्ष में भी कितनी ही म्युनि-

सिपैलिटियों ने दूध जांचने के लिए इसी यंत्र को आधार मान रक्खा था। किंतु विचार करने से मालूम हो जायगा कि इस कार्य्य में कितनी भयंकर भूल की जाती थी।

ऊपर कह चुके हैं कि दूध में चर्बी का भाग पानी से हलका होता है। अतएव जिस दूध में जितना ही अधिक भाग चर्बी का होगा उतना ही वह दूसरे दूधों की अपेक्षा हलका होगा—अर्थात् उसका आपेक्षिक गुरुत्व उतना ही कम होजायगा। निदान ऐसे दूध में लैक्टोमीटर का पारा भी उतना ही अधिक नीचे जायगा। इसके विपरीत जिस दूध में से चर्बी का भाग या मक्खन निकाल लिया गया है वह शुद्ध मक्खनदार दूध की अपेक्षा भारी हो जायगा—अर्थात् उसका आपेक्षिक गुरुत्व बढ़ जायगा और लैक्टोमीटर का पारा उसमें कम डूबेगा। अतएव इस यंत्र के अनुसार बढ़िया मक्खनदार दूध तो बुरा समझा जायगा और मक्खन निकाला हुआ दूध अच्छा। वास्तव में इस भूल के कारण योरोप के कुछ डेयरी वालों ने अनुचित लाभ उठाना भी आरंभ कर दिया था। पहले वह दूध में से मक्खन निकाल कर उसका आपेक्षिक गुरुत्व बढ़ा देते थे। पश्चात् पानी मिला कर उसे उचित अवस्था में कर लिया करते थे। पानी मिलाने से दूध का बचा-खुचा मक्खन ऊपर को तैर आता था, जिससे वह दूध देखने में भी बढ़िया और मक्खनदार जँचने लगता था। इस प्रकार वह कर्मचारियों और जनता दोनों ही की आँखों में धूल झोंकने लगे। बाद में जब यह भूल मालूम हुई तो उपरोक्त यंत्र का भरोसा छोड़ दिया गया। वास्तव में शुद्ध दूध की ठीक-ठीक पहचान सिवाय वैज्ञानिक विश्लेषण के दूसरे प्रकार से नहीं हो सकती। वैसे स्थूल रूप से जाँचने के लिए दूध को किसी काँच के साफ़ गिलास में रख कर देख सकते हैं। यदि उसमें अधिक पानी मिला है तो वह कुछ नीले रंग का दिखाई

पड़ेगा। जीभ पर लेकर चखने से भी पानी मिला हुआ दूध कुछ रूखा और स्वादहीन मालूम होता है। ख़ालिस दूध कुछ-कुछ मीठा स्निग्ध, और स्वादयुक्त होता है। मक्खन, मलाई अथवा खोवा निकालने से भी दूध की बहुत कुछ पहचान हो सकती है। वैज्ञानिक ढंग से जांचने के लिये दूध में चर्बी तथा अन्य ठोस भागों (milk-solids not fat) की मात्रा देखी जाती है। जिस दूध में मिलावट होगी उसमें ये चीज़ें अपेक्षाकृत कम निकलेंगी। चर्बी की मात्रा जानने के लिये एक विशेष प्रकार की मशीन होती है जिसे 'गार्बर्स सेंटीफ्यूज' (Garbers Centrifuge) कहते हैं। इस मशीन के द्वारा अलकोहोल और गंधक के तेजाब की सहायता से दूध में चर्बी की मात्रा जानी जा सकती है। इंगलैण्ड में जिस दूध में प्रति १०० भाग पीछे कम से कम ३ भाग चर्बी तथा ८½ भाग अन्य ठोस (milk solids other than fat) का नहीं निकलता वह क़ानूनन् शुद्ध दूध नहीं माना जाता और उसका चालान कर दिया जाता है*। हमारे देश में साधारणतः अच्छी

---

*Sale of Milk Regulation 1901 (of England).

Sec. 4—"Where a sample of milk (not being milk sold as skimmed or separated or condensed milk) contains less than 3 per cent. of milk fat, it shall be presumed for the purposes of Sale of Food and Drugs Acts of 1875 to 1899, until the contrary is proved, that the milk is not genuine by reason of the abstraction therefrom of milk-fat, or the addition thereto of water.

"Where a sample of milk (not being milk sold

गाय के दूध में चर्बी का भाग लगभग ३.५७ फ़ीसदी पाया जाता है। अस्तु, बम्बई की म्युनिसिपैलिटी ने गाय के दूध में चर्बी का भाग कमसे कम ३.५, अन्य ठोस भाग ८.४ प्रतिशत तथा भैंस के दूध में चर्बी ५ प्रति शत और अन्य ठोस का भाग ६.५ प्रतिशत नियत कर रक्खा है। जिस दूध में इन सीमाओं से कम मात्रा पायी जाती है उसका चालान कर दिया जाता है। म्युनिसिपैलिटी की ओर से निरीक्षक लोग शहर भर में घूमफिरकर ग्वालों और दूधबेचने वालों के दूध की जाँच किया करते हैं। इनके जाँच करने का ढंग भी बड़ा अच्छा है। निरीक्षक किसी भी दूध वाले के यहाँ अचानक पहुँच जाता है और उससे एक सेर दूध खरीद कर तथा उसी के सामने आधा-आधा दो बोतलों में भर कर ऊपर से मुहर लगा देता है। बोतलों के ऊपर दूधवाले के ठेके का नम्बर तथा तारीख़ इत्यादि का लेबिल भी चिपका दिया जाता है। इसके पश्चात् एक बोतल दूधवाले के पास रख दी जाती है और दूसरी विश्लेषण के लिये प्रयोगशाला में भेज दी जाती है।

किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी कितनी ही दशाओं में दूध की मिलावट नहीं पकड़ी जा सकती। ख़ासकर जिन गायों के दूध में चर्बी का अंश अधिक रहता है वहाँ तो यह मिलावट बड़ी आसानी

---

as skimmed or separated or condensed milk) contains less than 8·5 per cent. of milk solids other than milk fat, it shall be presumed for the purposes of the Sale of Food and Drugs Acts, 1875 to 1899, until the contrary is proved that the milk is not genuine, by reason of the abstraction therefrom of milk solids other than milk fat, or the addition thereto of water."

से छिप सकती है। उदाहरणार्थ मैसूर राज्य की अच्छी गाय में घी का अंश ४·५८ और ठोस दूध का अंश १६·०८ तक पाया गया है। इंगलैन्ड के वेल्स प्रांत की गाय में ८·३ फी सदी तक घी का भाग मिला है तथा जर्सी जाति की गाय में २० फी सदी तक ठोस दूध का भाग पाया गया है। अस्तु, ऐसे दूध में यदि कुछ पानी मिला दिया जाय तो पता लगाना कठिन होगा। दूध में मेल कई प्रकार का दिया जाता है। पानी की मिलावट तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। किन्तु इसके अतिरिक्त चावल का आटा, अरारोट इत्यादि दूसरी वस्तुएँ भी मिला दी जाती हैं जो साधारण तौर पर देखने से अथवा लैक्टोमीटर के द्वारा नहीं मालूम की जा सकतीं। चावल के आटे से दूध का गाढ़ापन बढ़ जाता है। अरारोट के आटे से दूध पर मलाई मोटी आती है। अस्तु, शहरों के दूध बेचने वाले इन वस्तुओं का प्रयोग बहुधा किया करते हैं, किन्तु इनका जल्दी पकड़ना बिना उपरोक्त वैज्ञानिक विश्लेषण के संभव नहीं होता।

चौथा अध्याय

दूध बढ़ाने के उपाय

जो जानवर अपनी जंगली अवस्था में स्वतन्त्र विचरते रहते हैं उनका दूध साधारणतः उनके बच्चों की आवश्यकता के अनुसार ही उत्पन्न होता है। उनके बच्चों की भूख जितने दूध से मिट सकती है और जितने दूध से उनका भली भाँति पालन-पोषण हो सकता है केवल उतना ही दूध माता के थन में बनता है, अधिक नहीं। इसके अतिरिक्त यह दूध उतने ही समय तक उत्पन्न होता है जब तक उन बच्चों को इसकी ज़रूरत रहती है। ज्यों-ज्यों बच्चे बढ़ते जाते हैं और अपना स्वाभाविक भोजन खाने के योग्य होते जाते हैं, त्यों-त्यों माता के थन का दूध भी कम होता जाता है। जिस समय वे अपना भोजन खोजने और खाने के योग्य पूर्णतया हो चुकते हैं उस समय दूध की उत्पत्ति बंद हो जाती है।

किन्तु गाय आदि काल से मनुष्य की सहचरी रह चुकी है। उसके रहन-सहन और खान-पान में सदा से मनुष्य का हाथ रहता आया है। अतएव उसकी प्रकृति, स्वास्थ्य, एवं दूध देने की शक्ति पर बहुत कुछ मनुष्य की ही बुद्धि की छाप है। जहाँ मनुष्य ने बुद्धि और कौशल से काम लिया है वहाँ इन गायों की बेतरह उन्नति हुई है और उनकी दूध देने की शक्ति भी आश्चर्य-जनक रीति से बढ़ गयी है। किन्तु जहाँ इनके प्रति उपेक्षा दिखलाई गयी है तथा अज्ञानता से काम लिया गया है वहाँ इनकी दशा पहले

से भी बुरी होगई है। अमेरिका, इँगलैंड, हालैंड, डेनमार्क आदि देशों में इस समय गोजाति की सबसे अधिक उन्नति हुई है और हमारे भारतवर्ष में उसी प्रकार इनकी सबसे गिरी अवस्था है। कारण वही है जो ऊपर कहा जा चुका है।

इँगलैंड की गायें इस समय सबसे अधिक दुधार समझी जाती हैं। वहाँ चौबीस घंटे में एक मन पाँच सेर तक दूध देने वाली गायें मिलती हैं। किन्तु सन् १८७६ ई० के पहले वहाँ की गौओं में कोई ख़ास बात न थी। सन् १८७६ में वहाँ गायों की एक प्रदर्शिनी की गयी जिसमें सबसे अच्छी गाय और साँड़ के मालिकों को सोने और चाँदी के पदक बाँटे गये। बस, तभी से उस देश में गोजाति की उन्नति की एक धारा सी चल पड़ी। बड़े-बड़े अमीरों और जमींदारों को गायें पालने और उनकी जाति को सुधारने का एक नशा सा सवार हो गया। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही समय में वहाँ की गायें ऐसी बढ़िया और दुधार होगयीं कि देखकर आश्चर्य होता है।

इधर अपने भारतवर्ष का हाल देखिए। एक समय था जब यहाँ नंदिनी और कामधेनु जैसी जाति की गायें भी मौजूद थीं, जिनसे जब चाहें तब दूध मिल सकता था। बादशाह अकबर के समय का प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ 'आईने अकबरी'* पढ़ने से मालूम होगा कि यहाँ की गायें बीस सेर रोज़ दूध देती थीं। दूध का भाव यहाँ दस आने मन था और घी एक आने सेर बिकता था। आज उसी देश के बच्चों को जिलाने के लिए विलायती दूध के डब्बे मँगाने पड़ते हैं, और उस पर भी पूरा नहीं पड़ता। कितने ही बच्चे यहाँ ऐसे हैं

*Vide Ain-i-Akbari (English translation by Blochman) page 199.

जिनको किसी भी प्रकार का दूध नसीब नहीं होता। बात यह है कि हमारी अज्ञानता और लापरवाही के कारण इस देश की गोजाति प्राय: नष्ट सी हो गयी है और उसमें दूध देने की शक्ति का बिल्कुल अभाव सा होगया है। थोड़ी बहुत जो अच्छी जाति की गायें काठियावाड़, सिंध, हाँसी, हिसार या हरियाना आदि में मिलती हैं, उनकी दशा भी मूर्ख अपढ़ ग्वालों के हाथ में पड़ कर धीरे-धीरे हीन होती जारही है।

जिस समय गोपालन के काम में यहाँ महाराज विराट्, दिलीप, नन्द तथा भगवान कृष्ण जैसे शासकगण और भृगु तथा वशिष्ठ जैसे विद्वान् लोग रास्ता दिखाया करते थे, उस समय यहाँ की गोजाति भी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँची हुई थी। किन्तु जब से यह काम यहाँ के दरिद्र और अशिक्षित ग्वालों के हाथ में पड़ा तभी से गोजाति की अधोगति भी होने लगी। अमेरिका और योरोप के देशों में दूध का सारा कारबार बड़े-बड़े अमीर और शिक्षा-प्राप्त व्यवसाइयों के हाथ में है, जिनकी सारी शक्ति, सारी चिंता एकमात्र अपने कारख़ाने के दूध को बढ़िया से बढ़िया और अधिक से अधिक परिमाण में पैदा करने की ओर लगी रहती है। इंग्लैंड में स्थान-स्थान पर दूध के कितने ही कारख़ाने वालों ने मिल कर अपनी-अपनी अधिकारी-समिति (Controlling Association) क़ायम कर रखी है, जिसकी ओर से उन्हें सलाह देने के लिए एक-एक गोतत्वविद् विशेषज्ञ नियुक्त रहता है। यह विशेषज्ञ अपनी समिति के हर एक सदस्य के कारख़ाने में हर पन्द्रहवें दिन जाता है और वहाँ के पशुओं की तथा उनके दूध की जाँच किया करता है। उसकी सलाह से पशुओं के खान-पान में परिवर्तन किया जाता है और उसीके साथ परामर्श करके यह भी निश्चय किया जाता है

कि किस पशु का दूध किस ढंग से बढ़ाया जा सकेगा। यदि कोई पशु ऐसा है जिसके दूध में वृद्धि अथवा सुधार की कोई आशा नहीं, तो वह उसी विशेषज्ञ की राय से बेच दिया जाता है और उसकी जगह पर अच्छी जाति का कोई दूसरा पशु मँगा लिया जाता है। समिति में गोपालन सम्बन्धी साहित्य तथा पत्रादि भी आया करते हैं। समय-समय पर बाहर से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विशेषज्ञों को बुला कर उनसे व्याख्यान दिलाने और सलाह लेने का भी प्रबंध रहता है। इस प्रकार की चेष्टाओं द्वारा वहाँ के व्यवसाइयों ने अपने यहाँ दूध की उत्पत्ति में आशातीत वृद्धि कर ली है। सरकार की ओर से भी उन्हें इस काम में दूध और मक्खन की प्रदर्शिनियाँ कराकर पूरा-पूरा प्रोत्साहन दिया जाता है।

अस्तु, यहाँ भी जब तक सुशिक्षित और जानकार लोग दूध का कारबार अपने हाथ में न लें तब तक इसकी उन्नति की विशेष आशा नहीं की जा सकती। साथ ही सरकारी सहायता की भी इस कार्य में बहुत बड़ी आवश्यकता है।

आज तक जिन-जिन देशों में दूध की पैदावार बढ़ायी जा सकी हैं वहाँ केवल दो ही प्रश्नों की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया गया है :—(१) गोवंश की उन्नति, और (२) गौओं के खान-पान का समुचित प्रबंध। इनमें से प्रत्येक को हम अलग-अलग लेकर नीचे विचार करते हैं।

(१) गोवंश की उन्नति :—इसके लिए बढ़िया जाति के साँड़ों (Stud-bulls) की आवश्यकता है। अच्छी जाति की गौओं का संयोग बढ़िया जाति के साँड़ों के साथ कराने से ही गोवंश का सुधार हो सकता है। इस देश के हिन्दुओं में पुण्यार्थ साँड़ों को छोड़ने की प्रथा बहुत प्राचीनकाल से चली आती है। सुनते हैं

मुसलमानों में भी इसी प्रकार धर्म के लिए "ख़ुदाई साँड़" छोड़े जाते थे और उनके गले में एक तख़्ती बाँध दी जाती थी। जो हो, किन्तु इस प्रकार के कितने ही साँड़ काशी, प्रयाग आदि तीर्थस्थानों में गली-गली घूमते और घर-घर का कूड़ा-कचरा खाते नित्य दिखाई पड़ते हैं। ऐसे साँड़ों से गोवंश के सुधार की आशा कदापि नहीं की जा सकती। एक तो जो लोग ऐसे साँड़ों को पुण्यार्थ छोड़ते हैं उनका ध्यान प्रायः कम-से-कम दाम में पुण्य लूटने की ओर रहता है। अतएव बढ़िया जाति के साँड़ इनमें प्रायः मिलते ही नहीं। दूसरे, इन साँड़ों का कोई मालिक न होने से इनकी देख-रेख भी कुछ नहीं होती। ऐसी अवस्था में यदि इन साँड़ों को कोई रोग-व्याधि हुई तो उसका प्रभाव इनकी संतान पर भी पड़े बिना नहीं रहता। अतएव, आवश्यकता इस बात की है कि चुन चुन कर अच्छी जाति के साँड़ बाहर से मँगवाये जाँय और उन्हें हर एक बड़े गाँव और शहर में पाला जाय। इस प्रकार के बढ़िया विलायती साँड़ कुछ स्थानों की सरकारी तथा विदेशी व्यवसाइयों की गोशालाओं में पले भी हैं, जहाँ फ़ीस देकर गौओं को गाभिन कराया जा सकता है। किन्तु देश की आवश्यकता को देखते हुए ये इने-गिने साँड़ केवल प्यासे के लिए दो चार ओस की बूँदों के समान हैं। इनसे भला देश भर की प्यास क्या बुझेगी! जब तक इस प्रकार के दो-दो चार-चार साँड़ प्रत्येक बड़े गाँव क़स्बे में न रक्खे जाँय तब तक यहाँ की आवश्यकता नहीं पूरी हो सकती।

संतोष की बात है कि इधर कुछ दिनों से, जबसे यहाँ के वर्तमान वाइसराय लार्ड लिनलिथगो (Lord Linlithgow) साहब पधारे हैं, भारतीय सरकार का और साथ ही प्रांतीय सरकारों का भी ध्यान इस ओर झुकने लगा है। गोवंश की उन्नति के लिए सर्वत्र एक नयी

जागृति सी दीख रही है। सब जगह अच्छे-अच्छे साँड़ों के संग्रह के लिए कुछ विशेष प्रयास किया जारहा है। हवा ठीक दिशा में चल रही है। यदि इसी प्रकार कुछ दिन लग कर काम हुआ तो आशा है कि भारतीय गौओं की बहुमूल्य जातियाँ विनष्ट होने से बच जायँगी और भारतीय बच्चों के लिए दूध का अकाल न रहेगा।

(२) गौओं का खान पान :—गौओं में अच्छी जाति की संतान उत्पन्न करने के साथ-साथ उनके खान-पान का भी समुचित प्रबंध करना अत्यावश्यक है। बिना इसके न गौओं की जाति सुधर सकती है और न उनका दूध बढ़ सकता है। वास्तव में यदि महत्व की दृष्टि से देखा जाय तो उनके भोजन का प्रश्न सबसे पहले आता है। भारत के कृषि सम्बंधी रायल कमीशन ने अपनी सन् १६२८ की रिपोर्ट में लिखा है:—"The two important factors in cattle improvement are feeding and breeding. We place feeding first because no outstanding improvement in the way of breeding is possible till cattle can be better fed."

अर्थात् "पशुओं की उन्नति के सम्बंध में भोजन और जनन दो ही प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। हम भोजन के प्रश्न को पहला स्थान देते हैं क्योंकि जब तक पशुओं को अच्छा भोजन न मिलेगा, केवल जनन-कार्य्य से उनकी उन्नति की विशेष संभावना नहीं।" अभी हाल में सरकारी विशेषज्ञों ने भी प्रयोग द्वारा यह बात सिद्ध की है कि यदि कुछ समय के लिए यहाँ पशुओं के जनन सम्बंधी प्रश्न को अलग रख कर केवल उनके भोजन में ही सुधार किया जाय तो भी उनका दूध क़रीब ड्योढ़ा बढ़ाया जासकता है। अतएव गौओं के भोजन का प्रश्न जनन के प्रश्न से कम महत्व का नहीं, बल्कि कुछ अधिक महत्व का है।

वास्तव में इनकी दुधार-शक्ति को पूर्ण रूप से बढ़ाने के लिए भोजन और जनन दोनों ही प्रश्नों पर साथ-साथ ध्यान देने की आवश्यकता है।

गाय कितनी ही अच्छी जाति की क्यों न हो, किन्तु यदि उसे समुचित भोजन न दिया जाय तो वह दूध देना कम कर देगी। इसके विपरीत यदि एक मामूली दरजे की गाय भी अच्छा और पौष्टिक भोजन पावे तो पहले से अधिक दूध देने लगेगी। अतएव हरएक गाय पालने वाले के लिए अपनी गाय के खानपान सम्बंधी प्रश्न पर भरपूर सावधानी रखना अत्यावश्यक है।

नीचे हम जिन-जिन खाद्य पदार्थों द्वारा गौओं की दुधार-शक्ति बढ़ाई जा सकती है उनका संक्षेप में वर्णन करते हैं। यह समझना भूल है कि सभी प्रकार के भोजन से गाय का दूध बढ़ सकता है। कुछ वस्तुएँ ऐसी भी हैं जिन्हें खिलाने से गायें मोटी तो हो जाती हैं किन्तु उनका दूध नहीं बढ़ता। अतएव दूध बढ़ाने के लिए अधिकतर किस प्रकार की वस्तुएँ खिलानी चाहिए इसे जान लेना ज़रूरी है।

ताज़ी हरी घास दूध के लिए बड़ी अच्छी चीज़ है। इसे जब तक मिल सके गाय को अवश्य और नित्य खिलाना चाहिए। दूब की घास गाय के लिए सब से अधिक लाभकारी है, किन्तु इसे खिलाने के पहले धो लेना चाहिए। ताज़ी और हरी चीज़ें देने से गाय सदैव नीरोग रहती है और उसका दूध केवल परिमाण में ही नहीं बढ़ता बल्कि स्वाद और गुणों में भी उत्तम होजाता है। हरी घास और पत्तियों में वाइटेमिन 'सी' की मात्रा अधिक होती है जो दूध में आजाती है। घास के साथ-साथ हरे साग और अनाजों के मुलायम पौधे भी खिलाते रहें तो अति उत्तम है। मूली, गाजर, शलजम, करमकल्ला और गोभी आदि से भी दूध की वृद्धि होती है। बाँस की कोमल

पत्तियों को उबाल कर ज़रा सी अजवाइन और गुड़ के साथ देने से भी दूध बढ़ जाता है।

जो गौएँ दिन भर में दस-बारह सेर दूध देती हों उन्हें इस प्रकार भोजन बनाकर नित्य खिलाना चाहिए:—गेहूँ, जौ, अथवा जुआर की दलिया ऽ।।।; दाल की भूसी ऽ१; खली ऽ॥; बिनौला ऽ।; उड़द की भूसी ऽ१।।; कतरी हुई हरी घास ऽ६ सब को मिला कर आधी छटाँक पिसा हुआ निमक और आधा तोला पिसे हुए गंधक के साथ खिला देवे। अनाज की दलिया और दाल की भूसी को एक दिन पहले से पानी में भिगो रखना चाहिए। इससे इनके गुण बढ़ जाते हैं। गाय के बलाबल और उसके दूध का अंदाज़ लेकर उपरोक्त वस्तुओं की मात्रा में कमी या वेशी भी की जा सकती है।

प्रसव के एक मास पहले से गाय की ख़ूराक में प्रति दिन हरी घास और साग-पौधों की मात्रा बढ़ाते जाना चाहिए। प्रसव के तीसरे दिन उड़द की भीगी हुई दलिया ऽ॥; चावल की कनकी ऽ।।; निमक ऽ-; पिसी हुई पीपर ऽ-; हल्दी आधी छटाँक, इन सब को पानी में मिला कर पकाना चाहिए और उसमें पावभर गुड़ मिला कर संध्या समय गाय को खिला देना चाहिए। इससे गाय का दूध ख़ूब बढ़ ज़ाता है।

दूध देने वाली गाय का दूध यदि किसी कारणवश बंद हो ज़ाय अथवा कम हो जाय तो उसे कच्चे पपीते का फल और पत्तियाँ एक साथ पीस कर गुड़ और मैदे के साथ खिलाना चाहिए। एक डाक्टर की राय है कि डेढ़ सेर गुड़ और नौ पाउंड बार्ली एक साथ पका कर खिलाने से गाय बहुत दिन तक दूध देती है। दूध बढ़ाने के लिए नीचे लिखी दवाएँ भी गाय को दी जाती हैं:—नाइट्रेट आफ़ पोटाशियम १ भाग; फिटकरी १ भाग; खरिया मट्टी १ भाग; ज़ीरा १० भाग;

सफेद चंदन २ भाग; निमक १० भाग; सौंफ १० भाग और लौंग ५ भाग। ये सब वस्तुएँ एक साथ मिला कर दो मुट्ठी नित्य सायं प्रातः गाय के भोजन के साथ सान कर देता रहे तो गाय की दुधार शक्ति बढ़ जाती है।

दूध में चिकनाई अधिक लाने के लिए खली, बिनौला, उड़द, हरी घास, और अनाजों की दलिया बहुत उपयोगी हैं। किन्तु दूध देने वाली गाय के लिए सरसों की खली उतनी अच्छी नहीं है जितनी तिल की खली। सरसों की खली में कुछ उत्तेजकता है। तिल की खली दुधार गाय के लिए सब से अच्छी पड़ती है। यह ख़ून को साफ़ करने वाली और पौष्टिक वस्तु है। इससे दूध अधिक पैदा होता है तथा उसमें चिकनाई का अंश भी बढ़ जाता है। किन्तु पुरानी होने से सब प्रकार की खली गुणहीन हो जाती है और उसमें बहुधा कीड़े भी पड़ जाते हैं। इसलिए जहाँ तक संभव हो बहुत पुरानी खली का व्यवहार न करना चाहिए।

गाय की दुधार-शक्ति प्रायः प्रथम प्रसव से लेकर छठवें प्रसवकाल तक बराबर बढ़ती जाती है। पश्चात् दो या तीन प्रसवकाल तक यह स्थिर रहती है। इसके बाद कम हो जाती है।

पांचवां अध्याय

दूध के बीजाणु

जिस समय दूध स्तन से निकलता है उसका रूप तरल, रंग स्वच्छ सफ़ेद, स्वाद कुछ हलकी मिठास लिए, और प्रतिक्रिया द्वारात्मक होती है। किन्तु दुहने के बाद ही उसमें एक प्रकार का परिवर्तन होना आरंभ हो जाता है। सब से पहले दूध के चीनी वाले भाग में परिवर्तन होता है, जिससे उसमें खटास पैदा हो जाती है। यह खटास समय पाकर प्रत्यक्ष जान पड़ने लगती है, और ज्यों-ज्यों दूध पुराना पड़ता जाता है त्यों-त्यों उसमें यह खटास बढ़ती जाती है। शीघ्र ही दूध के अल्बुमेन, केसिन और अंत में घी वाले अंश में भी परिवर्तन आरंभ हो जाता है, जिससे दूध का रूप, रंग और स्वाद इतना बदल जाता है कि वह पीने योग्य नहीं रहता।

ये परिवर्तन दूध के पदार्थों में स्वाभाविक नहीं हैं। इनका कारण वास्तव में कई प्रकार के अत्यंत सूक्ष्म जंतु हैं जो दूध में सदैव पहुँच जाया करते हैं और उसमें परिपुष्ट हो कर बराबर जीते और तेज़ी के साथ बढ़ते रहते हैं। इनके बढ़ने से ही दूध में विकार पैदा होता है। यदि ये जंतु दूध में न रहने पावें अथवा सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर दिये जाँय तो दूध कदापि न बिगड़े। इनके अतिरिक्त कितने ही अन्य प्रकार के सूक्ष्म जीव भी दूध में पहुँच जाया करते हैं जिनमें से कुछ तो हानिकारी होते हैं, और कुछ यद्यपि, शरीर को विशेष रूप से हानि नहीं पहुँचाते किन्तु जिस दूध में रहते हैं उसमें गन्दगी की सूचना देते

हैं, कारण कि ऐसे जीवाणु मुख्यतः मल-मूत्रादि गंदी वस्तुओं में ही रहा करते हैं और वहीं से दूध में पहुँच जाया करते हैं। नीचे हम इन सब प्रकार के जीवाणुओं का संक्षिप्त विवरण देते हैं।

जीवधारियों की जिस श्रेणी में पेड़ और पौधों का स्थान है उसी में हम उपरोक्त तमाम जंतुओं को भी रख सकते हैं। वास्तव में इन्हें एक प्रकार के सूक्ष्म पौधे ही समझना चाहिए। अंग्रेज़ी में ये 'बैक्टीरिया (Bacteria)' नाम से प्रसिद्ध हैं। हम इन्हें 'बीजाणु' कह कर पुकार सकते हैं।

संक्षिप्त इतिहासः--आज से लगभग ३०० वर्ष पहले ल्यूवेनहेक (Leuwenhoek) नामक एक हालैंड निवासी सज्जन ने पहले-पहल वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। उसने अपने एक साधारण अणुवीक्षण यंत्र की सहायता से लोगों को मनुष्य और जानवरों के सड़े हुए मल-मूत्र, मांसादिक वस्तुओं में एक प्रकार के अत्यन्त सूक्ष्म जंतुओं की उपस्थिति दिखलाई थी जिससे सारा वैज्ञानिक संसार आश्चर्य में पड़ गया था। किन्तु फिर इस विषय में बहुत दिन तक कोई नई बात नहीं मालूम हुई। सन् १८३० में ईरनबर्ग (Ehrenberg) ने और तत्पश्चात् फर्डिनैन्ड कोन (Ferdinand Cohn) ने इस विषय को फिर से हाथ में लिया और उसकी नये सिरे से जाँच आरंभ की। परिणामस्वरूप केवल इतना मालूम हो सका कि ये जन्तु अपनी शारीरिक रचना एवं क्रियाओं में वस्तुतः वनस्पति जाति के हैं और उसी के समान इनकी उत्पत्ति तथा वृद्धि हुआ करती है।

अन्त में जब से फ्रांस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक लुई पास्ट्यर (Louis Pasteur, 1822-1895) ने इस विषय को अपने हाथ में लिया और अपनी प्रयोगशाला में इन जन्तुओं को अलग-अलग जीवित और

वर्धित करने का साधन प्राप्त किया तब से इस विषय का ज्ञान बड़ी तेज़ी के साथ बढ़ने लगा। उन्होंने भाँति-भाँति के बीजाणुओं को लेकर और उनकी वृद्धि करके हर एक के रूप, गुण, स्वभाव और रहन-सहन आदि का पता लगाया और उनका वर्गीकरण किया, जिससे इस विषय का एक नया शास्त्र ही तैयार होगया। इस शास्त्र को 'बैक्टीरियालोजी (Bacteriology) अथवा 'बैक्टीरिया-विज्ञान' के नाम से पुकारते हैं।

पास्ट्यर साहब के प्रयोगों से यह बात अच्छी तरह सिद्ध होगयी है कि सब प्रकार की सड़न का एक मात्र कारण केवल कुछ विशेष जाति के बैक्टीरिया हैं, जो हवा में रहा करते हैं। यदि इन्हें किसी वस्तु में से एक बार पूर्णतया नष्ट कर दिया जाय और फिर उसमें इनकी छूत न पहुँचने पावे तो वह वस्तु बहुत दिन तक बिना सड़े हुए अच्छी अवस्था में रक्खी जा सकती है। इस प्रकार से जानवरों के मांस, रक्त, दूध आदि हफ़्तों रक्खे जा सकते हैं और बिगड़ते नहीं।

लुई पास्ट्यर के बाद इस क्षेत्र में सबसे प्रसिद्ध नाम राबर्ट कोश (Robert Koch 1843-1910) का आता है। यह जर्मनी का विद्वान् था। इसकी खोजों से तपेदिक़, प्लेग, हैज़ा जैसे भयंकर रोग उत्पन्न करने वाले बीजाणुओं का पता लगा और उनके विषय में बहुत सी उपयोगी बातें मालूम हुईं। वास्तव में इन रोगों से बचने के लिए जो भिन्न-भिन्न उपाय आजकल काम में लाये जाते हैं उनका बहुत कुछ श्रेय इसी विद्वान् को है।

इस समय भी बैक्टीरिया विषयक ज्ञान बिल्कुल पूरा नहीं कहा जा सकता। अब भी इसके विषय में खोज बराबर ज़ारी है और नित्य नयी-नयी बातें मालूम होती जारही हैं। इस समय तक जो कुछ बातें

इस सम्बंध में मालूम होचुकी हैं उन्हीं के आधार पर इनका संक्षिप्त हाल नीचे लिखा जाता है।

शरीर-रचना—जिस प्रकार छोटे-छोटे ईंटों के जुड़ने से बड़े-बड़े महल तैयार हो जाते हैं उसी प्रकार सब जीवधारियों के शरीर भी एक प्रकार की ईंटों से तैयार हुए हैं। किन्तु ये ईंटें सजीव होती हैं और आकार में इतनी छोटी हैं कि केवल अच्छी शक्ति के अणुवीक्षण यंत्र से ही देखी जा सकती हैं। इन सजीव ईंटों को 'सेल' (Cell) कह कर पुकारते हैं। उसमें प्रोटोप्लाज़्म (protoplaasm) नामक एक विशेष प्रकार का पदार्थ भरा रहता है।

मनुष्य, पशु, पक्षी, पेड़ और पौधों के शरीर में असंख्यों सेल लगे हैं। किन्तु बैक्टीरिया जाति के जीव अत्यंत सूक्ष्म होते हैं, इसलिए इनके शरीर की बनावट में केवल एक ही सेल लगता है। इनका आकार $\frac{१}{२५०००}$ इंच से लेकर इससे कई गुणा अधिक तक का रहता है।

साधारणतः ये तीन प्रकार की शकलों में मिलते हैं:—(१) पहिये की तरह गोल (coccus); (२) डंडी की तरह लम्बे (bacillus); और (३) लहिरियेदार अथवा उमेढनदार (spirillum) शकल में।

इनकी उत्पत्ति और वृद्धि—इनकी उत्पत्ति साधारणतः विभाजन-पद्धति (fission) से होती है। अर्थात् प्रत्येक बीजाणु अपने शरीर को बढ़ा कर दो टुकड़े कर देता है, जिससे एक की जगह दो बीजाणु बन जाते हैं। इस प्रकार क्षण भर में ही इनकी संख्या दुगनी होजाती है। अनुकूल परिस्थिति पाकर ये इसी प्रकार दुगने हो-हो कर अपनी संख्या आश्चर्यजनक शीघ्रता के साथ बढ़ा लेते हैं। कई प्रकार के बीजाणुओं में हिलने-डोलने की भी शक्ति रहती है। प्रायः सभी के जीने और बढ़ने के लिए कोई तरल अथवा अर्ध तरल साधन की

आवश्यकता होती है, यद्यपि कुछ ऐसे बीजाणु भी हैं जो बहुत समय तक सूखे में ही पड़े रह सकते हैं।

जिस प्रकार सब पेड़-पौधों को भोजन पाना आवश्यक है उसी प्रकार इन बीजाणुओं को भी उपयुक्त ख़ूराक की ज़रूरत है। इनकी ख़ूराक में प्रायः कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सिजन और नाइट्रोजन नामक तत्वों की आवश्यकता रहती है। साथ ही कुछ खनिज तत्वों की भी ज़रूरत है। चीनी और अल्बुमेन मिश्रित पदार्थों में इन्हें सब से बढ़िया भोजन प्राप्त होता है। ऊपर लिखे सभी तत्व दूध में मौजूद रहते हैं। अतएव दूध प्रायः सब प्रकार के बैक्टीरियों के लिए एक अत्यंत उत्तम और अनुकूल निवासस्थान है। इससे न केवल दूध के ही बीजाणु पनपते हैं, बल्कि हर प्रकार के रोग उत्पन्न करने वाले विषैले बीजाणु भी पहुँच कर जीते और बढ़ते हैं। अतएव दूध के देखभाल की अत्यधिक आवश्यकता रहती है।

गरमी और सरदी का प्रभाव

सब प्राणियों के समान इन बीजाणुओं पर भी गरमी और सरदी का पूरा प्रभाव पड़ता है। प्रायः ७५ डिग्री से लेकर १०० डिग्री तक की गरमी में ये बीजाणु ख़ूब पनपते हैं, और इनकी संख्या बड़ी तेजी के साथ बढ़ती है। किन्तु अधिक गरमी में इनकी वृद्धि रुक जाती है और ये मरने लगते हैं। १८० डिग्री के तापमान में कुछ ही जाति के बीजाणु ऐसे हैं जो जीवित बच सकते हैं। किन्तु २१२ डिग्री में (जितनी गरमी से पानी खौल उठता है) कोई भी बीजाणु अधिक देर तक नहीं जी सकते। सूखी गरमी की अपेक्षा तर गरमी से ये बहुत शीघ्र मरते हैं। उदाहरणार्थ भाप की गरमी इनके लिए अत्यंत घातक है। सरदी सहने की शक्ति इनमें बहुत बढ़ी हुई है,

यहाँ तक कि कोई-कोई जाति के बीजाणु—२०२°F की सरदी में भी चौबीस घंटे तक जीवित पाये जाते हैं। फिर भी सर्दी के प्रभाव से इनकी वृद्धि तो रुक ही जाती है। सर्दी में ये बिल्कुल निश्चेष्ट हो जाते हैं। प्रकाश से भी, विशेषतः सूर्य्य की सीधी किरणों में पड़ कर, ये बलहीन होजाते हैं और इनमें निश्चेष्टता आजाती है।

कभी-कभी कुछ बीजाणु कर्तव्यशून्य होकर गाँठ का रूप (Spore form) धारण कर लेते हैं। उस समय उनके शरीर के सेल (cell) का किनारा चारों ओर से उभर कर मोटा पड़ जाता है और उसमें भरा हुआ प्रोटोप्लाज़्म एक ओर को सिकुड़ कर कड़ा हो जाता है। ऐसी अवस्था में ये बीजाणु गरमी और सरदी सहने के लिए ख़ूब तैयार होजाते हैं और जल्दी मरते नहीं। अवस्था अनुकूल पाते ही ये फिर अपने काम में सचेष्ट होजाते हैं!

निवासस्थान

सब प्रकार के बीजाणुओं का घर कहाँ है? वे रहते कहाँ हैं? इस विषय में इतना समझ लेना काफ़ी है कि पृथ्वी के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक, जल, थल और वायु में जहाँ कहीं कोई भी पेड़-पल्लव अथवा प्राणी मिल सकता है, वहाँ इन बीजाणुओं की उपस्थिति अवश्य मिलेगी। सूखी भूमि की ऊपरी सतह पर केवल एक चुटकी धूल में ही ये बीजाणु करोड़ों की संख्या में देखे जा सकते हैं। किन्तु भीतर की सतह में इनकी संख्या कम होती जाती है। यहां तक कि बीस पचीस फ़ीट की गहराई में किसी भी प्रकार के बीजाणु नहीं पाये जाते।

पानी का जो सोता पृथ्वी के गर्भ से फूट कर निकलता है उसमें आरम्भ में एक भी बीजाणु नहीं पाया जाता। किन्तु हवा लगते ही

इस पानी में भाँति-भाँति के बीजाणु भर जाते हैं। उदाहरणार्थ नदी, झील, तालाब और समुद्र का पानी इन बीजाणुओं से सदा भरपूर रहता है। प्रत्येक घन सेन्टीमीटर माप के अच्छे पीने योग्य पानी में साधारणतः ७०० या ८०० बीजाणु पाये जाते हैं।

वायु में भी इन बीजाणुओं की उपस्थिति बराबर एक रूप से नहीं रहती। समुद्र, पहाड़, मैदान या ऐसी जगहों में जहाँ मनुष्यों की आबादी बहुत कम है ये बीजाणु प्रत्येक घन गज़ में १०० से भी कम पाये जाते हैं। किन्तु घनी आबादी के अंदर, विशेषतः जिस समय वहाँ गर्द उड़ रही हो, केवल एक घन फुट वायु में इनकी संख्या ४००००० से भी ऊपर पहुँच जाती है। भूमि से १२००० फ़ीट ऊँची हवा में बीजाणु बिल्कुल नहीं पाये जाते।

प्रकार

बहुत से बीजाणु ऐसी जाति के हैं जो हमारे लिए किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते। वे केवल मुर्दा वस्तुओं को छिन्न-भिन्न करके उन्हीं के आदि तत्वों में परिणत कर देते हैं और इस प्रकार प्रकृति में एक तरह की सफ़ाई का काम किया करते हैं। बहुत से ऐसे बीजाणु हैं जो दुग्ध-विकारी बीजाणुओं (Milk ferments) के समान कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओं में विशेष प्रकार के परिवर्तन पैदा करते हैं। शेष बहुत से ऐसी जाति के बीजाणु भी हैं जिन्हें हम रोगाणु कह सकते हैं, कारण कि उनसे मनुष्यों और दूसरे जानवरों में भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

दूध में बीजाणुओं की उपस्थिति

एक स्वस्थ जानवर के स्तन में जिस समय दूध दुग्ध-ग्रन्थि से उत्पन्न होता है, उसमें किसी प्रकार के भी बीजाणु नहीं रहते। जहाँ

तक अभी मालूम हुआ है शरीर के भीतर कोई भी रास्ता ऐसा नहीं है जिसके द्वारा जानवरों के पाकाशय अथवा रुधिर में से कोई बीजाणु दूध में पहुँच सकें। किन्तु जो दूध हमें पीने को मिलता है उसमें प्रायः लाखों बीजाणु भरे रहते हैं। ये सब कहाँ से आजाते हैं? अवश्य ही इनमें से बहुतेरे तो वायु में से जा पहुँचते हैं। बहुत से दुहने के बरतन में और दुहने वाले के हाथों में चिपके रहते हैं, और बहुत से पशु के शरीर से भी झड़ पड़ते हैं। किन्तु इन सब के अतिरिक्त दूध में बीजाणुओं की उपस्थिति का एक बड़ा कारण और भी बतलाया जाता है। वह इस प्रकार है:—दूध दुह चुकने के पश्चात् थोड़ा सा दूध सदैव स्तनों के मुँह पर और उनके छेदों के भीतर लगा रह जाता है। इन पर स्वभावतः हवा के बीजाणु आ चिपकते हैं। यहाँ उन्हें अनुकूल भोजन और गरमी मिलने के कारण उनकी संख्या बड़ी तेज़ी से बढ़ने लगती है। जब तक दूसरी बार दूध दुहने का समय आता है तब तक में इनकी संख्या बेहद बढ़ चुकती है। इन्हीं में से बहुत से बीजाणु छेदों के रास्ते से होकर स्तन के अंदर दुग्धाशय और दूध की नालियों तक पहुँच जाते हैं। वहाँ भी इनकी संख्या बड़ी तेज़ी के साथ बढ़ती रहती है, जिससे शीघ्र ही इनकी एक बड़ी भारी बस्ती वहाँ तैयार हो जाती है। अतएव दोबारा दुहने का समय आने तक जो दूध दुग्धाशय में इकट्ठा होता है उसमें इन बीजाणुओं की संख्या बहुत अधिक पायी जाती है। क़रीब पाव भर या डेढ़ पाव दूध जो आरम्भ में स्तनों से निकलता है वह इन बीजाणुओं से बिल्कुल ही भरपूर रहता है। डाक्टर शल्ज़ (Dr. Schultz) ने अपने प्रयोगों से सिद्ध किया था कि आरम्भ के दुहे हुए दूध में प्रायः प्रति घन इञ्च दूध १२,६०००० बीजाणुओं से लदा रहता है। किन्तु जो दूध अन्त में निकलता है उसमें बीजाणुओं की संख्या बहुत ही कम अथवा बिल्कुल नहीं पायी जाती।

इससे जान पड़ता है कि पशु के स्तन से सदैव बीजाणुशून्य दूध पाना एक प्रकार से असम्भव है। तथापि इसमें संदेह नहीं कि सफ़ाई और गाय की निरोगता का पूरा-पूरा ध्यान रखने से बीजाणुओं की संख्या दूध में बहुत कुछ कम की जा सकती है, और साधारणत: व्यवहार के योग्य अच्छा और शुद्ध दूध पाया जा सकता है।

दूध में कौन-कौन से बीजाणु पाये जाते हैं।

जैसा कि पहले कह आये हैं, दूध सभी प्रकार के बीजाणुओं के जीने और बढ़ने के लिए एक अत्यंत अनुकूल साधन है। इसके अतिरिक्त दूध में इन बीजाणुओं के पहुँचने के लिए भी इतने अधिक और इतने प्रकार के अवसर मिला करते हैं, कि इनकी पूरी पूरी फ़ेहरिस्त देना एक प्रकार से असाध्य है। साथ ही ऐसी फ़ेहरिस्त से कोई लाभ भी नहीं। उपयोगिता की दृष्टि से हमें केवल उन्हीं बीजाणुओं के विषय में जान लेना आवश्यक है जो हमारे लिए कुछ विशेष रूप से लाभकारी अथवा हानिकारी हैं। ऐसे बीजाणुओं को हम प्राय: दो विभागों में रख सकते हैं।

१. **दुग्धजातीय बीजाणु,** अर्थात् ऐसे बीजाणु जो स्वभावत: सभी दूध में रहा करते हैं। जिस प्रकार कुछ ऐसे जानवर हैं जो केवल ख़ास-ख़ास स्थान अथवा जलवायु में ही पाये जाते हैं, उसी प्रकार कुछ ऐसे बीजाणु भी हैं जो केवल दूध में रहने के आदी हो गये हैं और इसलिए हम उन्हें दुग्ध-जातीय कह कर पुकार सकते हैं।

२. **विजातीय बीजाणु,** अर्थात् ऐसे बीजाणु जिनकी उपस्थिति दूध में स्वाभाविक नहीं, बल्कि केवल आकस्मिक कही जा सकती है। ऐसे ही बीजाणुओं में रोगात्पादक बीजाणुओं की गिनती है, जो हमारे लिए विशेष महत्व के हैं।

नीचे हम उपरोक्त दोनों प्रकार के बीजाणुओं के सम्बंध में अलग अलग लिखते हैं:—

१-दुग्धजातीय बीजाणु

ये बीजाणु प्रायः सबके सब जिस दूध में रहते हैं उसमें कुछ विशेष प्रकार के विकार अथवा परिवर्तन उपस्थित किया करते हैं, जिससे दूध का रूप, रंग अथवा स्वाद बदल जाता है। इन्हें हम मुख्यतः चार समूहों में रखकर विचार सकते हैं:—(क) शर्करांश-विकारी बीजाणु; (ख) केसइन-अंश विकारी बीजाणु, (ग) घृतांश-विकारी बीजाणु; तथा (घ) रंग वाले बीजाणु।

(क) शर्करांश-विकारी बीजाणु (Lactic ferments)—हर प्रकार के दूध में प्रायः यही बीजाणु सब से अधिक संख्या में पाये जाते हैं। इनका आक्रमण सदैव दूध के चीनी वाले भाग पर होता है, जिसे ये अपना आहार बनाते हैं, और उसके बदले में 'लैक्टिक एसिड' नाम की एक खटास पैदा करते हैं। जिस समय यह खटास काफ़ी मात्रा में उत्पन्न हो चुकती है उस समय दूध जम जाता है और उसके स्वाद में खट्टापन आ जाता है। सब को मालूम होगा कि दूध एक दो दिन रक्खा रहने से जम कर खट्टा हो जाता है। यह करतूत इसी समूह के बीजाणुओं की है।

पहले लोगों का विश्वास था कि यह कार्य केवल एक ही जाति के बीजाणुओं द्वारा किया जाता है। किन्तु इस समय तक बीस से अधिक भिन्न-भिन्न जाति के बीजाणुओं का पता लग चुका है, जो दूध में उपरोक्त ढंग से लैक्टिक एसिड पैदा करते हैं। इनमें से सब से प्रसिद्ध बीजाणु वे हैं जो साधारणतः 'लैक्टिक एसिड बेसाइलस' (Lactic acid bacillus of Hueppe) के नाम से पुकारे जाते

हैं। स्थानाभाव से यहाँ हर एक जाति के बीजाणु का हाल देना संभव नहीं। केवल इतना ही जान लेना उचित होगा कि इस समूह का कोई भी बीजाणु अपने शरीर में गाँठ (Spores) नहीं पैदा करता और न अधिक गरमी बर्दाश्त कर सकता है। प्रायः ८० डिग्री से लेकर १०० डिग्री तक की गरमी में ये ख़ूब सचेष्ट रहते हैं और इनकी संख्या बड़ी तेज़ी के साथ बढ़ती है। ८० डिग्री से ज्यों-ज्यों गर्मी कम होती जाती है त्यों-त्यों इनमें निश्चेष्टता आती जाती है और ५० डिग्री से नीचे तो दूध में लैक्टिक एसिड बनता ही नहीं। इसी प्रकार १०० डिग्री से अधिक गरमी बढ़ने पर भी इनमें निश्चेष्टता आने लगती है, और १५० डिग्री की गरमी में ये सब के सब स्वाहा हो जाते हैं।

यदि ८५ डिग्री तक के गरम और बीजाणु-रहित (sterile) दूध में थोड़े से उपरोक्त 'लैक्टिक एसिड बेसाइल' (lactic acid bacille) बीजाणु डाल रक्खे जाँय तो प्रायः १५ घंटे में इनके द्वारा बड़ा ही उत्तम और एकरास दही तैयार होजाता है। इसी प्रकार मक्खन और पनीर बनाने में भी इन बीजाणु का महत्व बहुत अधिक है, किंतु इस विषय में हम यथावसर आगे चलकर लिखेंगे।

(ख) केसइन-अंश-विकारी बीजाणु (ferments of casein) इन बीजाणुओं का आक्रमण दूध के केसइन भाग पर होता है। इनके द्वारा भी दूध जम जाता है। किन्तु ये लैक्टिक एसिड नहीं पैदा करते। इनमें से कुछ जातियाँ (putrefactive ferments) तो दूध में सड़न पैदा करती है, जिससे दूध बदबू करने लगता है; कुछ केसइन में रासायनिक परिवर्तन करके उसे पेप्टोन नामक द्रव्य में परिणत कर देती हैं; और कुछ दूध में ज़हरीले विकार (Ptomaines) पैदा करती हैं। साधारणतः इन बीजाणुओं की

बाढ़ शर्करांश-विकारी लैक्टिक एसिड पैदा करने वाले बीजाणुओं के सामने रुकी रहती है। किन्तु ये बीजाणु अधिकतर गाँठदार जाति (spore-forming) के होते हैं और इनमें सरदी-गरमी बर्दाश्त करने की बहुत अधिक शक्ति रहती है। अतएव जिस समय अधिक गरमी अथवा सरदी के कारण लैक्टिक एसिड वाले बीजाणु निश्चेष्ट रहते हैं उस समय ये बीजाणु बढ़ जाया करते हैं और दूध को बिगाड़ देते हैं। यही कारण है कि कभी-कभी ठंडक में रक्खा हुआ दूध बिगड़ कर महकने लगता है। ज़हरीले विकार उत्पन्न करने वाले बीजाणुओं के कारण दूध में से तार उठने लगता है और उसमें कुछ फेन या श्लेष्मा के समान पदार्थ पैदा हो जाता है। कभी कभी इनके कारण दूध का स्वाद भी कड़ुवा हो जाता है।

(ग) घृतांश-विकारी बीजाणु (Butyric ferments)—ये दूध के घी वाले अंश पर धावा करते हैं और इनके द्वारा ब्यूटाइरिक एसिड (Butyric acid) नामक विकार पैदा होता है, जिससे मक्खन या मलाई में एक प्रकार की किटास (rancidity) आजाती है। दूध में इनका कोई प्रभाव नहीं जान पड़ता।

(घ) रङ्गवाले बीजाणु (Chromogenic bacilli)—कभी कभी ये बीजाणु भी दूध में पैदा हो जाते हैं, जिससे दूध का रंग बदल जाया करता है। ये प्रायः तीन प्रकार के पाये जाते हैं :—

(१) लाल रंग पैदा करने वाले (prodigiosus) बीजाणु, जिनसे दूध का रंग लाल होजाता है। इससे बहुधा दूध में पशु के रक्त का संदेह हो जाता है।

(२) नीला रंग पैदा करने वाले (cyanogenus) बीजाणु जिनसे दूध नीला पड़ जाता है।

(३) पीला रंग पैदा करने वाले (synxanthus) बीजाणु जिनसे दूध पीला दीखने लगता है।

२–विजातीय बीजाणु

इस विभाग में कुछ तो केवल अपवित्रता-सूचक बीजाणु हैं और कुछ रोगात्पादक बीजाणु हैं।

अपवित्रतासूचक बीजाणुओं में स्टेफाइलोकाक्सी (Staphylococci), बैसाइलस कोली (Bacillus coli) आदि नाम की कई एक जातियां हैं, जो प्रायः मनुष्य और पशुओं के मल-मूत्रादि गंदी जगहों में पायी जाती हैं। दूध में इनकी उपस्थिति केवल वहीं पायी जाती है जहाँ स्वच्छता सम्बन्धी नियमों का पालन नहीं किया जाता। साधारण ग्वालों के दूध में और बाज़ारू दूध में इनकी उपस्थिति विशेष रूप से मिलती है। जिन गोशालाओं में सफ़ाई का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाता है, जानवरों का मूल-मूत्र और कूड़ा कचरा इकट्ठा नहीं होने दिया जाता और दूध दुहने के पहले सदैव जानवरों के स्तन, पीठ, पैर आदि को धोकर उनपर जमी हुई गोबर मिट्टी कीचड़ इत्यादि साफ़ करदी जाती है, वहाँ ये बीजाणु दूध में नहीं पहुंच पाते। जहाँ तक विदित है इनसे मानव शरीर को कोई विशेष क्षति नहीं पहुंचती, किन्तु दूध को विकृत ये भी कर डालते हैं।

रोगोत्पादक बीजाणुः—दूध के द्वारा जो-जो रोग फैलते हुए देखे गये हैं उनमें से मुख्य-मुख्य के नाम ये हैं :— (१) तपेदिक; (२) टाइफ़ायड या अंत्र-ज्वर (typhoid); (३) डिफ़थीरिया (diphtheria) नाम का गले का रोग; और (४) हैज़ा। इनके अतिरिक्त रक्त-ज्वर (scarlet fever) ; माल्टा-ज्वर, कंठ-प्रदाह (sore

throat) ; संग्रहणी आदि और भी कितने ही छुतहे रोगों के नाम कहे जा सकते हैं।

तपेदिक

इस रोग की छूत दूध में मनुष्य अथवा पशुओं के द्वारा पहुंचती है। जो आदमी दूध को दुहता है, बांटता है, बेचता है, अथवा किसी अन्य कारणवश छूता है वह यदि तपेदिक से पीड़ित है तो उसके द्वारा इस रोग के बीजाणु दूध में अवश्य पहुंच जाते हैं। बहुधा ये लोग स्वयं तो बीमार नहीं रहते, किन्तु बीमारों के साथ रहते-सहते या उठते-बैठते हैं और इसलिए उपरोक्त बीजाणुओं को अपने शरीर अथवा कपड़ों में लपेटे फिरते हैं, जिससे अवसर आने पर ये बीजाणु दूध में झड़ जाते हैं और दूध को छुतहा कर देते हैं।

कभी-कभी जिन पशुओं का दूध दुहा जाता है उन्हीं को तपेदिक का रोग रहता है। अतएव दुहते समय उनके श्वास, खांसी, मल मूत्रादि से उड़ कर ये बीजाणु दूध तक पहुंच जाते हैं। अथवा यदि उनके स्तन में किसी प्रकार का घाव या कटी-फटी जगह हुई तो वहीं से ये बीजाणु दूध में भर जाते हैं।

कुछ समय पूर्व लंदन शहर के आस-पास की तमाम गोशालाओं से दूध के नमूने मँगा कर जाँचे गये थे। उनमें से ५ फ़ी सदी नमूनों में तपेदिक के बीजाणु मौजूद पाये गये। अपने यहाँ के शहरों में भी दशा इससे अच्छी नहीं बल्कि ख़राब ही कही जा सकती है।

तपेदिक़ के बीजाणुओं का पता पहले पहल सन् १८८२ में जर्मनी के विद्वान् राबर्ट कोश (Robert Koch) ने लगाया था। इन बीजाणुओं की वृद्धि के लिए ८६ डिग्री से लेकर १०४ डिग्री तक की गर्मी अत्यन्त अनुकूल पड़ती है। ठंडक पाकर ये प्रायः नष्ट हो जाते

हैं। सूर्य्य की सीधी किरणों से भी ये मर जाते हैं। किन्तु सूखी हालत में ये बराबर जीवित रहते हैं।

दूध और दूध की बनी हुई वस्तुओं में ये महीनों तक जीते रह सकते हैं। किन्तु ये अधिक ठंड अथवा गरमी नहीं बर्दाश्त कर सकते। इसलिए दूध को उबाल लेने से ये नष्ट हो जाते हैं और इनका सारा भय जाता रहता है।

टाईफ़ायड (typhoid) बुख़ार

इस रोग की छूत साधारणतः पानी के द्वारा फैलती है। यदि दूध के बरतन, चम्मच, हाथ इत्यादि ऐसे पानी से धोये गये हों जिसमें टाईफ़ायड के बीजाणु मौजूद हों तो वे इनके द्वारा दूध में पहुँच जाते हैं। बहुत से ग्वाले दूध में पानी मिला कर बेचते हैं। इससे भी दूध में ये बीजाणु अत्यधिक संख्या में पहुँच जाते हैं। कभी-कभी पशुगण चरते हुए जिस गड्ढे, गढ़ैया या तालाब में पानी पीने के लिए उतरते हैं उसमें इन रोगाणुओं की बस्ती मौजूद रहती है। अतएव बहुत से रोगाणु उसी समय इनके स्तनों पर चिपक कर छिद्रों द्वारा भीतर पहुँच जाते हैं और अंदर दुग्धाशय में अपना अड्डा जमा लेते हैं, इससे भी उनका दूध छुतहा हो जाता है। इस प्रकार दूध में इन रोगाणुओं के पहुँचने के एक नहीं अनेकों कारण हैं, जिनका गिनाना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है।

डिफ़थीरिया या गले का रोग

विलायत के ट्रास्क (Trask) नाम के एक डाक्टर ने सन् १६०८ में हिसाब लगाकर देखा था कि दूध के द्वारा उस समय तक

वहाँ ४१ बार यह रोग फैल चुका था*। इनमें से कई बार तो इस बात का पता नहीं लग सका कि दूध में इसके रोगाणु किस प्रकार पहुँचे। किन्तु अधिकतर दशाओं में मालूम किया गया कि इसकी छूत दूध में केवल मनुष्यों ही के द्वारा पहुँची थीं। इस रोग से पीड़ित मनुष्यों ने या तो दूध को दुहा था, या बाँटा अथवा वेचा था, अथवा किसी दूसरे कारणवश उसे छुआ था। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि दूध में ये रोगाणु स्वयं रोगियों के द्वारा नहीं, बल्कि रोगियों के पास जाने-आने वालों के द्वारा पहुँच जाता है। उदाहरण के तौर पर नीचे एक अमरीकन घटना का उल्लेख किया जाता है।

यह घटना मेसाचुसेट्स (Massachusetts) नामक प्रान्त के ब्रुकलाइन (Brookline) नामक स्थान में हुई थी। एक ग्वाले के दो बच्चे यकायक डिफ्थीरिया रोग से पीड़ित हुए। इन्हें तुरंत हस्पताल में पहुँचा दिया गया। शेष सब घर के आदमी स्वस्थ थे। तीन ही सप्ताह के पश्चात् इस ग्वाले के ग्राहकों में डिफ्थीरिया की बीमारी फैलने लगी। ब्रुकलाइन में केवल सात या आठ ही घरों में उसका दूध जाता था। इनमें से चार घरों में यह बीमारी पैदा हुई। तत्काल ग्वाले के दूध की सरकारी जाँच की गयी। उसमें इस रोग के बीजाणु पाये गये। तब ग्वाले के सब नौकरों और घर वालों की भी जाँच की गयी। मालूम हुआ कि तीन आदमियों के गले में डिफ्थीरिया के बीजाणु मौजूद थे।

हैज़ा

हैज़ा की छूत भी दूध के द्वारा बहुधा फैला करती है। किन्तु इसके

---

* Vide Bulletin No 41 Public Health and Marine Hospital Service (England), 1908 p.32.

रोगाणु प्रायः कच्चे दूध में अधिक समय तक नहीं जीते। इसका कारण, जैसा कि हम आगे के अध्याय में बतलावेंगे दूध के लैक्टिक एसिड पैदा करने वाले बीजाणु हैं। औटाये हुए दूध में लैक्टिक एसिड के बीजाणु नष्ट हो जाते हैं। अतएव ऐसे दूध में हैज़े के बीजाणु तेज़ी के साथ बढ़ जाते हैं। इस रोग की छूत भी दूध में ऊपर कही हुई रीतियों से ही रोगियों के द्वारा अथवा अपवित्र जल के साथ पहुँच जाती है।

इसी प्रकार रक्त ज्वर, कंठ प्रदाह (Sorethroat), संग्रहणी आदि कई दूसरे प्रकार की बीमारियाँ भी दूध के द्वारा उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका अलग-अलग वर्णन देने की यहाँ आवश्यकता नहीं जान पड़ती। केवल नमूने के तौर पर कुछ मुख्य-मुख्य रोगों की चर्चा ऊपर दे दी गयी है। इतने ही से मालूम पड़ जाता है कि गोशालाओं की सफाई और दूध की देखभाल की कितनी अधिक आवश्यकता है।

छठवां अध्याय

दूध की स्वाभाविक बीजाणुमारक शक्ति

ताज़ा दुहा हुआ दूध लेकर यदि अलग रख दिया जाय और थोड़े-थोड़े समय पर उसकी जाँच की जाय तो मालूम होगा कि कई घंटे तक उसमें बीजाणुओं की न केवल वृद्धि ही रुकी रहती है बल्कि उनकी संख्या में बराबर कमी भी होती जाती है। इसका कारण दूध की स्वाभाविक बीजाणु-मारक शक्ति (germicidal property) बतलायी जाती है। सन् १८६० में पहले-पहल फ़ाकर (Fokker) नाम के वैज्ञानिक ने लोगों का ध्यान दूध के इस अनुपम गुण की ओर आकर्षित किया था। तब से इस विषय में अनेकों वैज्ञानिकों द्वारा बराबर परीक्षाएँ होती आई हैं।

रोज़नो और मकाय (Rosenau and McCoy) नाम के वैज्ञानिकों द्वारा दिये हुये नीचे के आँकड़ों से विदित होगा कि किस प्रकार बीजाणुओं की संख्या ताजे दूध में थोड़े समय बाद घटने लगती है और पीछे से फिर बढ़ जाती है। साथ ही इससे यह भी जान पड़ेगा कि इस सम्बन्ध में गरमी का प्रभाव कहाँ तक पड़ता है।

एक स्वस्थ गाय का दूध

(इसमें दुहने के बाद ही प्रति घन सेन्टीमीटर दूध में ५०० बीजाणु परीक्षा द्वारा देखे गये थे)

दुहने के बाद का समय	भिन्न-भिन्न डिग्री के तापमान में बीजाणुओं की संख्या प्रति घन सेन्टीमीटर दूध में।		
	कमरे का तापमान २६°-२६° सेंटीग्रेड	१५° सेंटीग्रेड	३७° सेंटीग्रेड
२ घंटे बाद	१३००	×	×
४ घंटे बाद	७००	६००	११३००
६ घंटे बाद	४००	५००	३८०००
८ ,, ,,	७८००	६००	३४२०००
१० ,, ,,	२६०००	१२००	५०,०००,०००
२४ ,, ,,	३४०,०००,०००	८००००	खट्टा होगया
४८ ,, ,,	अगणित	१३८००००	,,
७२ ,, ,,	खट्टा होगया	८६०००,०००	,,
६६ ,, ,,	,,	खट्टा होगया	,,

ऊपर के आँकड़ों से विदित होता है कि ठंडक में बीजाणुओं की संख्या अधिक देर तक घटती जाती है, किन्तु ३७ डिग्री सेन्टीग्रेड

की गरमी में यह सब से कम समय के लिये घटा करती है। यह बीजाणु-मारक शक्ति दूध में न केवल दुग्ध-जातीय बीजाणुओं के ही लिए है, बल्कि रोगोत्पादक बीजाणुओं के लिए भी है।

यद्यपि सब प्रकार की परीक्षाओं से यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि ताजे दूध में बीजाणुओं की संख्या न केवल रुक ही जाती है बल्कि कुछ समय के लिए घटती भी रहती है, तथापि इसका वास्तविक कारण क्या है इस विषय में वैज्ञानिकों में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि जिस प्रकार ताज़े रुधिर में बीजाणुओं को मारने की शक्ति रहती है उसी प्रकार, यद्यपि उससे बहुत कम मात्रा में, यह शक्ति ताज़े दूध में भी रहा करती है। इसके प्रमाण में बतलाया जाता है कि दूध को औटा लेने से यह शक्ति बिल्कुल ग़ायब हो जाती है और थोड़ा गरम कर लेने से भी कमज़ोर पड़ जाती है।

फ्रीडेल और मीनिक (Friedel and Meinick) आदि विद्वानों ने सिद्ध किया था कि दूध में यह शक्ति भिन्न-भिन्न जाति के बीजाणुओं के लिए भिन्न-भिन्न रूप से रहा करती है। उदाहरणार्थ हैजे के बीजाणु तो ताज़े दूध में मर जाते हैं, किन्तु संग्रहणी के बीजाणु (उन्हीं के मतानुसार) नहीं मरते। हीनमान और ग्लेन (Heinemann and Glenn) नाम के वैज्ञानिकों ने बतलाया था कि दूध में कुछ दुग्धजातीय बीजाणु तो प्रथम ४ या ५ घंटे तक बड़ी तेज़ी के साथ घटते रहते हैं, कुछ कम तेज़ी के साथ घटते हैं, कुछ बिल्कुल नहीं घटते, और कुछ बढ़ भी जाते हैं। कोपलैंड (Copeland) ने एक प्रयोग कर के दिखलाया था कि दूध में थोड़ा सा बोरिक एसिड मिला देने से उसकी बीजाणु-मारक शक्ति ग़ायब होजाती है और फिर उसमें बीजाणुओं की संख्या बिल्कुल नहीं घटती।

कुछ वैज्ञानिकों की ऐसी भी राय है कि दूध में बीजाणुओं की संख्या घटती कभी नहीं, केवल घटती हुई सी जान पड़ती है। उनका कहना है कि दूध में बहुत से बीजाणु आपस में चिपट कर एक हो जाया करते हैं। इसलिए उनकी संख्या आरंभ में कम जान पड़ने लगती है। स्टाकिंग (Stocking) नामक विद्वान ने इसका कारण कुछ दूसरा ही बतलाया था। उसका कहना था कि आरंभ में दूध के बीजाणुओं की संख्या घटने का कारण उसकी बीजाणु-मारक शक्ति नहीं है, बल्कि स्वयं वे बीजाणु हैं जो दूध में अपने अनुकूल परिस्थिति न पा सकने के कारण ग़ायब हो जाते हैं। केवल वे ही बीजाणु उसमें रह जाते हैं जो दूध को अपने अनुकूल पाते हैं। अतएव आरंभ में उनकी संख्या कम होती जान पड़ती है।

सब बातों पर विचार करने के बाद मालूम होता है कि इसका कोई एक कारण नहीं है, बल्कि प्रायः सभी कारण एक साथ काम करते हैं। बहुत संभव है कि कुछ बीजाणु परस्पर चिपक रहते हों। और इस कारण अपनी संख्या को कुछ हद तक कम कर देते हों। यह भी संभव है कि कुछ अपने अनुकूल परिस्थिति न पाकर ग़ायब भी हो जाते हों। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि ताज़े दुहे हुए दूध में कुछ ऐसी स्वाभाविक क्रियाएँ भी होती है जो बीजाणु की वृद्धि को रोकती हैं और उनकी संख्या को कम करती हैं।

सब प्रकार के प्रयोगों का जो कुछ निष्कर्ष निकलता है वह संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है:—

(१) आरंभ में हर एक दूध की कुछ समय के लिए ऐसी अवस्था रहती है जब कि उसमें बीजाणुओं की वृद्धि रुक कर उनकी संख्या कम होती जाती है। यह अवस्था कितनी देर तक रह सकती है यह प्रत्येक

दूध के तापमान पर निर्भर है। १° सेंटीग्रेड (1°c) के तापमान में रक्खा हुआ दूध लगभग ५ या ६ दिन तक इस अवस्था में रह सकता है, जिससे यदि छठवें दिन उसकी जाँच करके देखा जाय तो ताज़े दूध की अपेक्षा उसमें बहुत कम बीजाणु निकलेंगे। किन्तु ३७° सेंटी० की गरमी में यह अवस्था बहुत ही कम समय के लिए होगी।

(२) इस प्रारंभिक अवस्था के बाद जो दूसरी अवस्था आती है। उसमें बीजाणुओं की संख्या उत्तरोत्तर तेज़ी के साथ बढ़ती जाती है।

(३) प्रायः हरएक दूध में अनेकों जाति के बीजाणु मौजूद रहते हैं। अतएव उनमें जीने के लिये परस्पर बड़ा संघर्ष उपस्थित होता है। बलवान जाति के बीजाणु सदैव निर्बल जाति के बीजाणुओं को दबा लेते हैं, और उन्हें नष्ट करके अपनी संख्या बढ़ाया करते हैं। प्रमाण के लिए एक ही दूध में से कई नमूने लेकर अलग-अलग बरतन में रक्खे गये थे। बाद में परीक्षा करके देखा गया कि हरएक बरतन के बीजाणु दूसरे बरतन के बीजाणुओं से जाति में भिन्न थे।

(४) लैक्टिक एसिड बेसाइल (lactic acid bacille) जाति के बीजाणुओं की वृद्धि के आगे प्रायः सब प्रकार के बीजाणुओं की वृद्धि रुक जाती है। और ये प्रायः अन्य सब जीवाणुओं को मार डालते हैं। प्रायः ६० डिग्री F. की गरमी में यह १५ घंटे के अंदर इतना लैक्टिक एसिड पैदा कर देते हैं कि उससे बड़ा उत्तम और चिकना दही जम जाता है।

(५) किन्तु अधिक गरमी में दूसरी जाति के लैक्टिक एसिड पैदा करने वाले बीजाणु भी तेज़ी के साथ बढ़ जाते हैं, जिससे दही ख़राब होजाता है। उदाहरणार्थ बैक्टीरिया लैक्टिस एअरोजीन्स

(Bacteria lactis aerogenes type) जाति के बीजाणुओं द्वारा दही फफस उठता है और उसमें बुलबुले पैदा होजाते हैं।

(६) रखाऊ दूध को मीठा अथवा स्वाद में अच्छा पाकर यह न समझना चाहिए कि वह दूध बिल्कुल निर्दोष है। संभव है किसी भयंकर रोग के बीजाणु उसमें वृद्धि पा चुके हों और प्राणों के घातक सिद्ध हों। कुलफ़ी मलाई, आइसक्रीम, तथा बर्फ़ में दबे हुए दूध में ऐसा धोखा बहुधा हो जाया करता है। इसलिए ऐसे दूध को बिना उबाले हुए कदापि न पीना चाहिए।

(७) दूध में रोगाणुओं का भय बहुधा निम्न लिखित कारणों से कम रहा करता है:—

(क) कच्चे दूध में स्वाभाविक बीजाणु-मारक शक्ति। किन्तु यह रोगाणुओं की संख्या पर निर्भर है। यदि रोगाणुओं का आक्रमण अधिक संख्या में हुआ हो तो केवल इस शक्ति पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

(ख) दूध में अन्य जाति के बीजाणुओं की उपस्थिति, जिनके कारण रोगाणुओं की वृद्धि में रुकावट पड़ती है। उदाहरणार्थ लैक्टिक एसिड पैदा करने वाले बीजाणुओं के द्वारा हैज़ा, टाईफ़ायड आदि कई रोगों के बीजाणु नष्ट हो जाते हैं।

(ग) प्रायः ग्वालों, डेयरी वालों अथवा फेरीवालों के दूध में कई पशुओं के दूध का मेल होता है। अतएव यदि किसी एक पशु के दूध में रोगाणु आगए हों तो उनकी संख्या अन्य पशुओं के दूध के साथ मिलकर बँट जाती है।

(घ) लोगों में प्रायः दूध को पीने के पहले उबाल लेने की बड़ी अच्छी चाल है। इससे दूध निर्दोष होजाता है। किंतु कभी-कभी लोग गरम किये हुये दूध में पीते समय चीनी मिलाते हैं। यह आदत भय से ख़ाली नहीं। इससे दूध में विषैले रोगाणुओं के फिर से जा पहुँचने का खटका है। इसलिए सदैव उबालने के पहले ही दूध में चीनी डाल लेना चाहिए और उसे छान भी लेना चाहिए।

सातवां अध्याय

दूध के रोगाणुओं से बचने के साधन

दूध में विषैले बीजाणुओं का भय पढ़ कर संभव है कुछ पाठक घबरा उठें और कहने लगें कि ऐसे दूध से तो दूर ही रहना अच्छा है। किंतु जैसा हम आरंभ में कह आये हैं हमें दूध के इस एक दोष को देख कर उसके सर्वश्रेष्ठ गुणों को न भूल जाना चाहिए। उचित यह है कि हम दूध को दोषरहित और शुद्ध रूप में पाने का उपाय करें, न कि दूध को ही छोड़ बैठें। पिछले अध्यायों में दूध के बीजाणुओं का जो कुछ वर्णन हुआ है उससे हमें अपनी रक्षा करने में यथेष्ट सहायता मिलेगी। यदि विचारपूर्वक देखें तो हम स्वयं मालूम कर सकते हैं कि किन-किन उपायों द्वारा इन रोगाणुओं से रक्षा की जा सकती है। ये उपाय दो प्रकार के हैं।

(१) रोगाणुओं को रोकनेवाले उपाय, (२) रोगाणुओं को नष्ट करने के उपाय। नीचे हम हरएक के सम्बंध में अलग-अलग लिखते हैं।

(१) रोगाणुओं को रोकने के उपाय

सब प्रकार के रोगाणुओं को रोकने के लिए सफ़ाई एक मुख्य उपाय है। दूसरा उपाय पशुओं के स्वास्थ्य की चिंता है। किंतु पशुओं का स्वास्थ्य भी सफ़ाई के बिना ठीक नहीं रह सकता। इसलिए

सफ़ाई ही मुख्य है। इस पर भी यदि पशु को कोई बीमारी जान पड़ती हो तो उसे पशुओं के इस्पताल भेज कर अथवा किसी जानकार से सलाह लेकर उचित चिकित्सा करानी आवश्यक है। यदि उसे क्षय आदि के समान कोई छुतही बीमारी हो तो उसे अन्य पशुओं से अलग भी कर देना होगा और जब तक उसे आरोग्य-लाभ न हो जाय तब तक उसका दूध व्यवहार में कदापि न लाना चाहिए।

किंतु अधिकतर रोगों की छूत दूध में ऊपर की गंदगी से आया करती है, जिससे हम तनिक ध्यान देने से आसानी से बच सकते हैं। हमारे देश में ग्वालों और साधारण डेयरीवालों में स्वच्छता सम्बंधी नियमों का कहाँ तक ज्ञान एवं ध्यान रहता है इसके लिए प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। किसी भी ग्वाले के यहाँ अथवा गोशाला में जाकर देख सकते हैं। चारो ओर कच्ची भूमि में गोबर और मूत्र की गहरी कीचड़ मची रहती है। मच्छर, मक्खी और दुर्गंध के मारे नाको दम आजाता है। पशुओं के शरीर भी कम गंदे नहीं होते। सेरों धूल और गर्द उनके बदन पर भरी रहती है। पैर, पेट और जाँघों पर गोबर और मिट्टी की सदैव मोटी पपड़ी जमी रहती है, जो कभी धोई नहीं जाती। स्वयं ग्वालों की दशा भी इससे कुछ विशेष अच्छी नहीं दीखती। न तो उनके शरीर पर सफ़ाई है और न काम में सफ़ाई। जैसे-तैसे हाथ से वहीं दूध दुहने बैठ जाते हैं। दुह चुकने के बाद भी अपने ग्लास और हाथ को बार-बार उसी दूध में डुबो कर ग्राहकों को बाँटते फिरते हैं।

ऐसी दशा में दूध गंदे और विषैले बीजाणुओं से कहाँ तक बचा रह सकता है, यह सोचने की बात है। यदि ऐसे दूध के कारण टाईफ़ायड, हैज़ा, संग्रहणी आदि रोग नित्य न फैलें तभी आश्चर्य है। किंतु इसमें ग्वालों और डेयरीवालों का अधिक दोष नहीं। अधिक

दोष ग्राहकों और दूध पीनेवालों का है। यदि ग्राहक स्वयं ऐसे दूध को लेना पसंद न करें तो ग्वाले भी बहुत शीघ्र सफ़ाई का पाठ सीखने लग जाँय। एक तो हमारे यहाँ दूध का रोज़गार करने वाले अधिकतर अपढ़ और गँवार लोग हुआ करते हैं, जिन्हें जीवन में सफ़ाई की कोई शिक्षा ही नहीं मिली। दूसरे, जब ग्राहक लोग उनका दूध ऐसी ही दशा में ख़रीद लिया करते हैं, तो उन्हें अधिक झंझट करने की आवश्यकता ही क्या है। अतएव दूध में सफ़ाई लाने के लिए सब से पहले ग्राहकों में ही सतर्कता की आवश्यकता है।

इसमें संदेह नहीं कि यदि हमारे यहाँ के सुशिक्षित वर्ग दूध का रोज़गार अपने हाथ में लेलें और इस विषय की ट्रेनिंग पाकर विलायत वालों की तरह हर जगह दूध के कारख़ाने खोल दें, तो स्वच्छ दूध का प्रश्न बड़ी आसानी से हल हो सकता है। साथ ही यहाँ के शिक्षितों की बेकारी भी कुछ दर्जे तक कम हो सकती है।

इस समय दूध के विषय में जो जाग्रति चारों ओर फैल रही है उससे सम्भव है कि आगे चलकर शिक्षितों का ध्यान इस ओर कुछ विशेष रूप से खिँच सके। किन्तु जब तक यह अवस्था पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त होती, तब तक क्या दूध की स्वच्छता का प्रश्न हमें अलग छोड़ रखना चाहिये ? क्या वर्तमान ग्वालों से सफ़ाई की बिल्कुल ही आशा नहीं ? ऐसा सोचना भूल है। यदि हर शहर और तहसीलों में कुछ समझदार लोग परस्पर मिल कर इस सम्बन्ध में आंदोलन खड़ा करें और लोगों को दूध की स्वच्छता का महत्व समझाने लगें, तो बहुत कुछ इस विषय में काम हो सकता है। सरकारी स्वस्थ्य-विभाग, म्युनिसिपैलिटी, और ज़िला बोर्डों को भी इस विषय पर ज़ोर देने की आवश्यकता है।

जैसा कि हम नीचे बतलाते हैं सफ़ाई रखने के लिए कुछ विशेष व्यय की आवश्यकता नहीं। केवल कुछ परिश्रम अवश्य पड़ता है।

किन्तु वह भी कुछ दिनों के बाद स्वाभाविक हो जाता है और जान नहीं पड़ता। अब जिस प्रकार बिना किसी व्यय के यह स्वच्छता लायी जा सकती है उसे हम लिखते हैं।

गोशाला की स्वच्छता :—गोशाला या गाय बाँधने की जगह ऐसी ढालू भूमि पर होनी चाहिए, जिससे पानी या मूत्र वहाँ ठहरने न पावे। तुरन्त बह जाय। इसके लिए फावड़े से ज़मीन को छील कर एक ओर को ढालू कर सकते हैं। साथ ही नीचे की ओर एक नाली भी बनानी चाहिए, जो अलग जाकर एक गड्ढे में गिरे। यह गड्ढा क़रीब दो फुट गहरा और एक फुट लम्बा-चौड़ा खोद लिया जाय तो ठीक होगा। इससे दिन भर भूमि पर जो कुछ पानी और मूत्र गिरेगा वह बह कर नालियों के द्वारा गड्ढे में एकत्र होता रहेगा। दूसरे दिन उसे उलच कर खेतों में डाल सकते हैं, खाद सड़ाने के काम में ला सकते हैं, अथवा और कहीं फेंक सकते हैं।

कच्ची भूमि पर यदि ईंटें बिछा ली जाँय तो अत्युत्तम है। इससे भूमि को रोज़ धो लेने में सुविधा पड़ेगी। किन्तु इसमें भी यदि व्यय का प्रश्न उठे तो कच्ची ही भूमि पर रोज़ घास या पुआल बिछा कर काम चला सकते हैं। परन्तु इसे रोज़ बदलते अवश्य रहना चाहिए। जंगल में पशुओं को चराते समय यह घास काट कर रोज़ लायी जा सकती है और बदली जा सकती है। पशुओं के नीचे की उठाई हुई गंदी घास खेतों में बढ़िया खाद का काम देगी। इसके अतिरिक्त इतना ध्यान और रखना चाहिए कि भूमि पर ज्यों ही गोबर गिरे उसे शीघ्र वहाँ से उठा लिया जाय।

गोशाला जहाँ तक सम्भव हो, किसी दालान में बनायी जाय। इससे वायु और प्रकाश की पहुँच भली भाँति हो सकेगी। किन्तु यदि

कोठरी हो तो उसमें खिड़कियों का रहना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर पिंडोर मिट्टी अथवा चूने से गोशाला की दीवार और ज़मीन को लीपते-पोतते भी रहना आवश्यक है। इस प्रकार बिना किसी व्यय के थोड़ा ध्यान देने से ही गोशाला में बहुत कुछ स्वच्छता लायी जा सकती है।

पशु की सफ़ाई :—पशुओं के शरीर में और उनके रोएँ के भीतर बहुधा धूल और गर्द बहुत अधिक भरी रहती है। इसके अतिरिक्त उनके पेट और पिछली टाँगों में बहुधा मिट्टी और कीचड़ की पपड़ी भी जमी रहा करती है। इनमें असंख्यों विषैले बीजाणुओं का वास हो सकता है। अतएव उन्हें रोज़ धोने और नहलाने की आवश्यकता है। नहलाने में इस बात का ध्यान रहे कि सदैव साफ़ और अच्छा पानी काम में लाया जाय। बहुधा नहलाने की कौन कहे, पशुओं को पीने तक के लिए मैला-कुचैला पानी देदिया जाता है। इससे कभी-कभी भयंकर हानि हो सकती है।

दूध दुहने में सफ़ाई :—दूध दुहने के पहले पशुके स्तन जाँघें और पेट को सदैव साफ़ गरम पानी से धो लेना अति आवश्यक है। इससे स्तन के ऊपर जमी हुई धूल और विषैले बीजाणु सब धुल कर छूट जाते हैं। साथ ही दुहनेवाले को अपने हाथ तथा दुहने का पात्र भी धोना न भूलना चाहिए। बहुधा दुहते समय ग्वाले लोग स्तनों से थोड़ा सा दूध निकाल कर अपनी अँगुलियों में चुपड़ लिया करते हैं। यह प्रथा अच्छी नहीं। इससे वायु के बहुत से बीजाणु अँगुलियों पर आ चिपकते हैं और फिर दूध के साथ मिल जाते हैं। अस्तु, यदि आवश्यकता हो तो इसके लिए घी या वेसलीन काम में लायी जा सकती है।

दूध को दुह चुकने के पश्चात् उसे ठंडा कर लेना चाहिए और फिर थोड़ी हवा दिखा कर किसी बंदमुँह के साफ़ और ऐसे बरतन में

रख लेना चाहिए, जिसमें नीचे की ओर खोलने और बन्द करने वाला एक बम्बा या टोंटी लगी हो। इसी टोंटी को खोलकर दूध निकाला और ग्राहकों को बाँटा जा सकता है। दूध में बारबार हाथ डुबाना कदापि अच्छा नहीं। यदि कभी ऐसी आवश्यकता आ भी पड़े तो किसी हत्थेदार बरतन से काम लेना चाहिए।

इस प्रकार यदि ऊपर लिखी बातों पर ध्यान रक्खा जाय तो बिना एक पैसा अधिक ख़र्च हुए दूध में बहुत कुछ स्वच्छता लायी जा सकती है, और उसमें विषैले बीजाणुओं की पहुँच भी बहुत कम होने पावेगी।

(२) बीजाणुओं को नष्ट करने के उपाय

दूध के बीजाणुओं को नष्ट करने के लिए प्रायः दो प्रकार के उपाय बतलाये जाते हैं:—

(१) रासायनिक वस्तुओं द्वारा; (२) दूध को गरम करके। दूध को गरम करने की भी दो रीतियाँ हैं:—

(१) जिससे दूध के सब बीजाणु मर जाते हैं और दूध बिल्कुल बीजाणु रहित हो जाता है। इस रीति को **'स्टेरिलाइज़ेशन'** (Sterilisation) अर्थात् **'पूर्णनिर्बीजींकरण'** कहते हैं। (२) जिससे दूध के प्रायः हानिकारी बीजाणु मर जाते हैं। इस रीति को **'पास्ट्यराइज़ेशन'** (Pasteurisation) अथवा **"अपूर्णनिर्बीजींकरण** कहते हैं। हम उपरोक्त हर एक उपाय को क्रमानुसार नीचे बतलाने का प्रयत्न करते हैं।

रासायनिक वस्तुओं द्वारा

कई प्रकार की ऐसी दवाइयाँ हैं जिन्हें ज़रा सा दूध में छोड़ देने से उसमें के अधिकतर बीजाणु मर जाते हैं। इनके नाम ये हैं:—

(१) फ़ारमैलिन (Formalin); (२) सेलिसालिक एसिड (Salicylic acid); (३) हाइड्रोजन पर आक्साइड (Hydrogen peroxide); (४) बेन्ज़ोइक एसिड (Benzoic acid) (५) बोरिक एसिड (Boric-acid); (६) एसिड पोटैशियम फ़्लोराइड (acid potasium fluoride); तथा (७) सोडियम कारबोनेट।

इसमें संदेह नहीं कि इनमें से प्रत्येक औषधि दूध के बीजाणुओं को मारने में समर्थ है; और यद्यपि इनके द्वारा दूध के स्वाद अथवा सुगन्ध में विशेष परिवर्तन नहीं जान पड़ता, किंतु फिर भी इनका प्रभाव शरीर के लिए कुछ न कुछ हानिकारी अवश्य होता है। इसके अतिरिक्त इनसे अधिकतर दूध के लैक्टिक एसिड पैदा करने वाले उपयोगी बीजाणु ही मरते हैं, जिससे दूध बहुत समय तक रक्खा रहने पर भी खट्टा नहीं होता। जैसा कि पहले कह चुके हैं, ये बीजाणु सदैव अन्य हानिकारी बीजाणुओं की वृद्धि को रोकते हैं। अतएव इनकी अनुपस्थिति में हानिकारी जीवाणु बड़ी शीघ्रता के साथ दूध में बढ़ जाते हैं; जिससे दूध, यद्यपि स्वाद में नहीं बिगड़ता, किंतु गुण में भयंकर और विषैला सिद्ध हो सकता है। लैक्टिक एसिड के बीजाणु एक प्रकार से हमारा हित और भी करते हैं। वे पुराने रखाऊ दूध को खट्टा बनाकर उसके पुरानेपन की सूचना दे दिया करते हैं। इससे दूध पीने वाला धोखे में नहीं पड़ सकता। किंतु इनके नष्ट होजाने पर हम उस लाभ से भी वंचित होजाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः दूध के कारख़ानों में बिल्कुल सही-सही वैज्ञानिक मात्रा में ये दवाएँ नहीं छोड़ी जातीं। कभी कुछ कम मात्रा में छोड़ी जाती हैं और कभी अधिक मात्रा में। कारख़ाने के कर्मचारी लोग केवल रोज़गारी होते हैं। वैज्ञानिक नहीं होते। अतएव वे अपने हित की दृष्टि से प्रायः उचित से अधिक ही मात्रा में ये दवाएँ छोड़ते

हैं, जिससे दूध अधिक समय तक रक्खा जा सके। इससे शरीर को कभी-कभी बहुत अधिक हानि पहुँच सकती है। अस्तु, इन्हीं कारणों से आजकल यह दवाएँ छोड़ने की चाल प्राय: उठा दी गयी है। अब यह रीति कदाचित् कहीं भी नह काम में लायी जाती।

(२) पूर्ण निर्बीजीकरण (Sterilisation)

इस विधि से दूध के समस्त बीजाणु नष्ट कर दिये जाते हैं और वह बिल्कुल निर्बीज बना दिया जाता है। अतएव वह हफ़्तों और महीनों तक रक्खा रहने पर भी नहीं बिगड़ता। इसके लिए दूध २१२°F से लेकर २४०°F तक की भाप की गरमी में नियत समय तक खौलाया जाता है और उसमें की सारी हवा निकाल दी जाती है। बाद में फिर उसे ठंडा करके साफ़ की हुई वायु रहित बोतलों में भर दिया जाता है, और उनके मुँह को मुहरबंद करके साफ़ ठंडे स्थानों में रख दिया जाता है। यह सारा काम मशीन के द्वारा बहुत सफ़ाई के साथ किया जाता है।

इस प्रकार. अधिक गरमी में कुछ देर तक खौलाने से दूध के बीजाणु तो प्राय: सब नष्ट होजाते हैं, किन्तु साथ ही दूध का रंग और स्वाद भी बहुत कुछ बदल जाता है। उसके चीनी वाले भाग पर तथा अन्य घुलनशील क्षारों में गरमी के कारण कुछ ऐसे रासायनिक परिवर्तन पैदा होजाते हैं, जिससे उसमें कुछ जले हुए दूध का सा स्वाद आजाता है। जो लोग ताज़ा दूध पीने के अभ्यस्त हैं उन्हें प्राय: ऐसा स्वाद रुचिकर नहीं होता। रंग भी इस दूध का बदल कर बादामी भूरा (Brown) हो जाता है।

जिस स्थान पर कोई संक्रामक रोग फैल रहा हो अथवा जहाँ शुद्ध

दूध बिल्कुल ही अप्राप्य हो वहाँ यह दूध बच्चों के लिए काम में ला सकते हैं।

युद्ध के सैनिकों के लिए भी प्रायः यही दूध काम में आता है। किंतु साधारण दशा में इस प्रकार का दूध व्यवहार करना ठीक नहीं जान पड़ता, कारण एक तो ऐसा दूध प्रायः बहुत दिनों का रखाऊ होता है, दूसरे, इसके बहुत से उपयोगी अंश भी अधिक आँच में जल चुकते हैं, जिससे यह दूध गुणों में ताज़े दूध की कदापि बराबरी नहीं कर सकता। इसमें वाइटेमिन (Vitamin) भी प्रायः बहुत ही कम अथवा बिल्कुल नहीं रह जाते।

(३) पास्टयुराइज़ेशन (Pasteurisation) अथवा अपूर्ण निर्बीजीकरण

दूध को पूर्णतया निर्बीज (Sterile) करने से उसके रूप, रंग स्वाद और गुणों में ऊपर लिखे हुए जो अंतर पैदा होते जाते हैं उनके कारण यह पद्धति केवल कुछ नियमित आवश्यकताओं के लिए ही काम में लायी जाती हैं। साधारण व्यवहार के लिए एक इसी प्रकार की दूसरी सुधरी हुई पद्धति है, जिसे 'पास्ट्युराइजेशन' अथवा 'अपूर्ण निर्बीजीकरण' कहते हैं ! इससे दूध के रूप रंग, और स्वाद में विशेष अंतर नहीं आने पाता।

यह पद्धति पहले-पहल सन् १८४७ में फ्रांस के लुई पास्ट्यर ने शराब के कुछ ऐबों को दूर करने के लिए निकाली थी। अतएव :इसका नाम भी उन्हीं के नाम पर रक्खा गया था। बाद में सन् १८८६ में साक्ज़लेट (Soxhlet) नाम के वैज्ञानिक ने इस विधि का उपयोग दूध पर किया। तब से इसका प्रचार सर्वत्र फैल गया। आजकल योरोप और अमेरिका के प्रायः सभी डेयरी वाले अपने

दूध को इस विधि से पहले शोध लेते हैं, तब उसे ग्राहकों में बाँटते हैं।

इस विधि से दूध के प्रायः तमाम हानिकारी बीजाणु तो नष्ट हो जाते हैं किंतु उसके रूप-रंग या स्वाद में अंतर नहीं आने पाता। वैज्ञानिकों के प्रयोग से यह सिद्ध हो चुका है कि प्रायः सब प्रकार के रोगाणु १५०°F की गरमी में १९ या २० मिनट से अधिक नहीं जी सकते। नीचे दिये हुए ब्योरे से यह बात और स्पष्ट हो जायगी:—

१—टाईफ़ायड ज्वर के रोगाणु ६०° C (= १४०° F) की गरमी में ५ मिनट से अधिक नहीं जी सकते।

२—डिफ़थीरिया के रोगाणु ५८°C की गरमी में १० मिनट के अन्दर ही मर जाते हैं।

३—संग्रहणी के रोगाणु ६०°C (=१४०° F) में अधिक से अधिक १० मिनट के अन्दर नष्ट हो जाते हैं।

४—हैज़ा के रोगाणु भी प्रायः ६०° (=१४०° F) में १० मिनट से अधिक नहीं जीते।

५—किंतु तपेदिक़ के बीजाणुओं की सहन शक्ति इस विषय में बढ़ी-चढ़ी है। इनके विषय में वैज्ञानिकों में भी मतभेद है। अधिकतर मत इस पक्ष में है कि ६०° C की गरमी में ये २० मिनट से अधिक नहीं जी सकते। जो हो, कम से कम इतना तो निश्चय है कि १४५° F में ये अवश्य ही मर जाते हैं।

अस्तु, दूध को इस विधि से शोधने के लिए कम से कम १४५°F की गरमी देना आवश्यक होता है। यह गरमी प्रायः आध घंटे तक दी जाती है। यदि इससे कम समय के लिए देना हो तो गरमी का तापमान ऊँचा करना पड़ता है। उदाहरणार्थ कुछ कारखानों में केवल दस मिनट के लिए १५९°F की गरमी दी जाती है। कुछ में

१६०°F की गरमी केवल २ या ३ ही मिनट तक दी जाती है। कहीं कहीं १६५°F की गरमी केवल आधे मिनट के लिए दी जाती है। **इन सब का उद्देश्य केवल यह है कि बीजाणुओं का नाश तो अधिक से अधिक संख्या में हो, किंतु दूध के रूप-रंग और स्वाद में परिवर्तन बहुत ही कम अथवा बिल्कुल न आने पावे।** प्रायः १६५°F तक की गरमी में तपाया हुआ दूध यदि एक ही दो मिनट के बाद ठंडा कर लिया जाय, तो उसके रूप-रङ्ग और स्वाद में इतना कम अंतर आता है कि जान नहीं पड़ता।

इस कार्य के लिए बाज़ार में भिन्न-भिन्न कम्पनियों के बने हुए अलग-अलग ढाँचे के यंत्र बिकते हैं, जिनमें वाष्प द्वारा दूध को गरम करने और फिर ठंडा करने का प्रबंध रहता है। घर में यही काम दूध को धीमी आँच में कुछ देर तक उबाल लेने से पूरा हो जाता है। उबालने से दूध के प्राय: जितने हानिकारी बीजाणु हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं और दूध शुद्ध हो जाता है। किन्तु इस प्रकार दूध को शोधने में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि दूध सदैव ताज़ा और तत्काल का दुहा लेना चाहिए। रखा हुआ दूध इस कार्य के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त है, कारण कि रखाऊ दूध में लैक्टिक एसिड के बीजाणु तथा अन्य विकारी (toxin producing) बीजाणु अपने-अपने विकार बहुत कुछ पैदा कर चुकते हैं। अतएव ऐसे दूध को गरम करने से केवल उसके बीजाणु मर जाते हैं किन्तु उनका विकार दूध में मौजूद रहता है। वह नहीं नष्ट होता, जिससे दुग्धशोधन का सारा उद्देश्य ही विफल हो जाता है। लैक्टिक एसिड की उपस्थिति के कारण ऐसा दूध टिकाऊ भी अधिक समय तक नहीं होता। तत्काल का बिल्कुल ताज़ा दुहा दूध यदि उपरोक्त रीति से बुद्धिमानी के साथ शोधा जाय तो उसकी टिकाऊ शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है। योरोप या

अमेरिका के देशों में जहाँ का जलवायु ठंडा होता है, ऐसा दूध ३६ से लेकर ४८ घंटे तक रक्खा रहने पर भी नहीं बिगड़ता । इस देश का जल-वायु गरम है। अतएव यहाँ यह दूध इतने समय तक नहीं टिक सकता, किन्तु फिर भी इसका टिकाऊपन काफ़ी अधिक बढ़ जाता है ।

बायोराइजिंग (Biorising)

उपरोक्त पास्ट्युराइज़ेशन की विधि में सुधार करके अब एक और नई विधि निकाली गयी है। इसमें १६७° F की गरमी से तपते हुए पात्र में दूध फ़व्वारे के रूप में छोड़ा जाता है।* फ़व्वारा अत्यंत बारीक छिद्रों का रहता है। इसमें से दूध बड़े वेग के साथ छोड़ा जाता है, जिससे वह अत्यंत सूक्ष्म कणों में विभाजित होकर केवल कुछ क्षणों के लिए उस गरम पात्र में गिरता है और फिर तत्काल बह कर ठंडे पात्र में पहुँच जाता है। इस प्रकार कहा जाता है कि दूध का रूप और स्वाद बिल्कुल नहीं बदलता, किन्तु काम इतना अधिक हो जाता है जितना १४५° F की गरमी में आध घंटे तक

*दूध को अधिक उत्तम और **'एकरास'** (Homogeneous) बनाने के लिए भी उसे इसी प्रकार के अत्यंत बारीक छेदवाले फ़ौव्वारे में से बड़े वेग के साथ छोड़ा जाता है, जिससे उसकी सारी चिकनाई अत्यंत सूक्ष्म कणों में बँट कर सारे दूध में मिल जाती है और दूध का रंग पहले से अधिक सफेद हो जाता है। इस प्रकार के दूध को देर तक रखने पर भी उसकी चिकनाई ऊपर को नहीं आने पाती, साथ ही दूध की पचनशीलता बढ़ जाती है और उसमें टिकाऊ शक्ति भी अधिक आ जाती है। योरोप की कितनी ही डेयरियों में दूध इस प्रकार से तैयार करके "होमोजीनस" (अर्थात् 'एकरास') दूध के नाम से बेंचा जाता है।

तपाने से भी नहीं होता। इसके लिए जो यंत्र बाज़ार में मिलता है उसे बायोराइज़ेटर (Biorisator) कह कर पुकारते हैं।

ठंडक-द्वारा बीजाणुओं की वृद्धि रोकना

(Refrigeration-method)

अधिक गरमी से बीजाणु मर जाते हैं, किंतु अधिक ठंड से ये प्रायः मरते नहीं, केवल संज्ञाहीन हो जाते हैं। इस अवस्था में न तो ये अपनी संख्या को बढ़ा सकते हैं और न अपना विकार पैदा कर सकते हैं। केवल मुर्दे की तरह बिल्कुल निश्चेष्ट होकर पड़े रहते हैं और अनुकूल अवस्था के लिए मार्ग जोहा करते हैं।

अतएव यदि दूध को ठंडक में रख दिया जाय तो उसके तमाम बीजाणुओं का काम रुक जायगा और वह देर तक ज्यों का त्यों बना रहेगा। सब को मालूम है कि जाड़े के दिनों में दूध देर तक नहीं बिगड़ता, किंतु गरमी में वह शीघ्र ही खट्टा हो जाता है। ३२°F (=०° C) के तापमान में (जितने में पानी जम जाता है) दूध प्रायः ४८ घंटे तक ज्यों का त्यों बना रहता है। न उसमें कोई बीजाणु बढ़ते हैं और न किसी प्रकार का विकार ही उत्पन्न होता है। यही अवस्था ५०°F (१०° C) के तापमान में भी देखी जाती है। अतएव दूध को (बल्कि मांस, मछली, अंडे और फल आदि सभी खाद्य वस्तुओं को) एक नियमित समय तक सुरक्षित रखने के लिए ठंडक भी बड़ा उपयोगी साधन है। गरमी के द्वारा तो दूध के रूप-रंग और स्वाद में कुछ परिवर्तन भी हो जाता है, किंतु ठंडक से वह दोष भी नहीं आने पाता। कुछ लोगों का विचार है कि ठंडक के द्वारा दूध की पाचन-शीलता में कुछ अंतर आ जाता है और

वह कुछ न कुछ गरिष्ठ हो जाता है। किंतु इस बात का प्रमाण अभी तक कोई नहीं मिला है।

दूध में ठंडक पहुंचा कर उसे सुरक्षित रखने के लिए छोटे और बड़े कई प्रकार के यंत्र (Refrigerators or Coolers) मिलते हैं, जिनके द्वारा कृत्रिम रूप से दूध की गरमी निकाल दी जाती है। और उसे उचित अवस्था तक (प्रायः ५०°F) तक ठंडा कर दिया जाता है। किंतु इस प्रकार सुरक्षित रखने के लिए दूध सदैव तत्काल का दुहा हुआ और शुद्ध ही लेना चाहिए। जो दूध रखाऊ है अथवा जिसमें रोग के बीजाणु पहुंच चुके हैं उसमें से ठंडक के द्वारा ये दोष दूर नहीं किये जा सकते।

आठवां अध्याय

दूध के कई दूसरे रूप

जमा हुआ दूध (condensed milk)

जिन देशों में दूध आवश्यकता से अधिक उत्पन्न होता है वहाँ वह विदेशों को भी भेजा जाता है। इसके लिए दूध के रूप में कुछ परिवर्तन करना पड़ता है। दूध में सब से बड़ा भाग पानी ही का होता है। किंतु पानी सब जगह मिल सकता है। अतएव बाहर भेजने के लिए दूध में से पानी का यह भाग अधिकतर अथवा बिल्कुल ही निकाल दिया जाता है, जिससे उसका आकार बहुत छोटा हो जाता है, और उसे बाहर भेजने में सुविधा पड़ती है। साथ ही रेल और जहाज़ के भाड़े में भी बड़ी किफ़ायत हो जाती है। इस प्रकार पानी-निकाला हुआ दूध दो तरह का बिकता है:—
(१) **जमा हुआ दूध** जिसमें से अधिकांश पानी निकाल दिया जाता है।

(२) **सूखी बुकनी** (milk powder) जिसमें से कुल पानी निकाल दिया जाता है।

(२) जमा हुआ दूध (condensed milk)

इस प्रकार दूध बेचने की रीति पहले-पहल सन् १८५६ में अमेरिका के गेल बार्डन (Gail Borden Jr.) नाम के एक व्यक्ति ने

निकाली थी। तबसे इसका प्रचार फैलते-फैलते आस्ट्रेलिया तथा योरोप के देशों में भी होगया। साथ ही अब इसमें वैज्ञानिक सुधार भी बहुत कुछ होचुके हैं, जिससे अब इस प्रकार का दूध बाज़ारों से बहुत अच्छी अवस्था में मिल सकता है। इसकी विधि इस प्रकार है।

प्रत्येक सेर दूध में आधपाव के हिसाब से गन्ने की चीनी ख़ूब अच्छी तरह मिला दी जाती है। फिर उसे इतना गरमाया जाता है कि यदि उसे वायुशून्य पात्र में डाल दिया जाय तो बराबर उबलता रहे। तत्पश्चात् उस दूध को वायुशून्य पात्र में डालकर कन्डेन्सर के खौलते हुए पानी में रख दिया जाता है तथा उसमें ४०°c से ५०°c (= १२२°F से १४०° F) तक की गरमी पहुँचायी जाती है। इस प्रकार दूध का बहुत सा जल-भाग भाप के रूप में उड़ जाता है, और दूध गाढ़ा पड़ जाता है। अंदर की सारी गैस वायुनिष्काशन यंत्र के द्वारा बाहर निकाल ली जाती है। पात्र में ऊपर की ओर एक काँच लगा रहता है जिसके द्वारा अंदर का दूध दिखाई पड़ता है। जब यह दूध जलते-जलते केवल एक तिहाई अथवा एक चौथाई बच रहता है, तब कन्डेन्सर में ठंडा पानी मिलाकर दूध के पात्र को ठंडा कर लिया जाता है। धीरे-धीरे दूध में से बुलबुले उठने बंद होजाते हैं, तब दूध को टीन के डब्बों अथवा बोतलों में रखकर इस प्रकार बंद करते हैं, जिससे उसमें वायु न पहुँच सके। इस प्रकार जमा हुआ दूध तैयार हो जाता है। यह दूध बहुत दिनों तक अच्छी अवस्था में रहता है और देश-विदेश सब जगह भेजा जा सकता है।

कहीं-कहीं इस दूध में चीनी बिल्कुल नहीं मिलायी जाती। किंतु इसके लिए दूध अत्यंत ताज़ा और स्वच्छ लेना पड़ता है, जिसमें खटाई (acid) नाममात्र को भी न बनी हो। इसी प्रकार मक्खन निकाले हुए दूध (separated milk) से भी जमा दूध तैयार होता है।

व्यवहार के लिए इसे पाँचगुने पानी में मिलाकर पतला कर लिया जाता है और फिर आग पर गरम करके पिला दिया जाता है। इस प्रकार के दूध में पदार्थों का मिश्रण प्रायः निम्न लिखित रूप से रहा करता है:—

पदार्थ	चीनी मिला दूध	बिना चीनी मिला दूध
पानी	२६.० %	४८.५ %
चर्बी	११.४ %	१६ %
दूध की चीनी	१६ %	१५ %
प्रोटीन	१२ %	१८ %
गन्ने की चीनी	३२ %	×
क्षार भाग	२.५ %	२.५ %

दूध की बुकनी (Dried milk)

दूध की सूखी बुकनी तैयार करने के लिए उसमें से पानी का सम्पूर्ण भाग सुखा कर निकाल देना पड़ता है। इसके लिए आज कल कई प्रकार की नयी-नयी मशीनें और रीतियाँ निकली हैं, जिनमें से 'क्राज़ की पद्धति' (Krause's method) अभी सब से नवीन है। इसके द्वारा बहुत ही कम समय में दूध का सारा पानी सुखा दिया जाता है, जिससे उसके पदार्थों एवं गुणों में बहुत ही कम अंतर आने पाता है। पानी निकल जाने पर सूखे दूध को बुकनी (dry milk-powder) के रूप में पीस लेते हैं और डब्बों में पैक करके बाहर भेजते हैं। इस दूध में भी टिकाऊपन बहुत अधिक आ जाता है। किंतु अधिक पुराना पड़ जाने पर इसमें रखाऊ तेल या चरबी की भाँति किटास पैदा हो जाता है, जिससे यह दूध पीने योग्य नहीं रह जाता।

दूध की यह बुकनी स्वाभाविक दूध के अतिरिक्त मलाई से तथा मलाई या मक्खन निकले हुए दूध से भी बनती है। बल्कि, दूध के जलीय भाग (whey) से भी यह तैयार होती है। इनमें से हर एक प्रकार की बुकनी में दूध के भिन्न-भिन्न पदार्थों की मात्रा इस तरह रहती है:—

पदार्थ	स्वाभाविक दूध	मलाई	मलाई उतरा दूध	मक्खन निकला दूध	दुग्ध-जल
पानी	४·० %	५%	३·० %	३·० %	२·० %
चर्बी	२६·० %	४१ %	१·० %	४·० %	२·० %
प्रोटीन	२३·० %	२१·० %	३३·० %	१७·० %	१४·० %
दूध की चीनी	४१·० %	२८ %	५०·० %	६७·० %	७४·० %
क्षार	६·० %	५·० %	७·० %	३·० %	८·० %

भारतवर्ष के प्राय: हर एक शहर में यह जमा हुआ विलायती दूध (condensed milk) और दूध की बुकनी (milk-powder) सौदागरों के दूकान पर बिका करती हैं और रोगियों तथा बच्चों को खाने के लिए दीजाती हैं। इस प्रकार का दूध हमारे देश में अधिक-तर नेदरलैंड, इंगलैंड, इटली, डेनमार्क और आस्ट्रेलिया आदि देशों से प्रतिवर्ष चालीस-पचास लाख रुपये का मँगाया जाता है। उदाहरणार्थ १९३४-१९३५ के साल में यह दूध हमारे यहाँ १,८०,९४२ हंड्रेडवेट (१ हंड्रेडवेट = क़रीब २६ सेर) बाहर से आया था जिसका दाम ४८,३६,९७६ रुपये दिये गये थे। एक समय था जब इस देश में दूध और घी की घर-घर नदियाँ बह रही थीं। आज उसी देश में रोगियों और बच्चों तक के लिए पूरा दूध नहीं जुरता और लाखों रुपये का दूध बाहर से मँगाना पड़ता है! यह हमारी हीनता का एक शोचनीय उदाहरण है।

बहुत से देहातों में अब भी दूध अधिकता के साथ उत्पन्न होता है, और मार्केट न मिलने के कारण पानी के मोल बिक जाता है। यदि ऐसे स्थानों में उपरोक्त रीतियों से दूध जमाने के कारख़ाने खोल दिये जायँ तो काफ़ी लाभ हो सकता है। किंतु इसके लिए पहले किसी विलायती ढंग के कारख़ाने में ट्रेनिंग लेलेने की आवश्यकता है।*

* अभी हाल में कलकत्ते के दैनिक पत्र 'ऐडवान्स' (Advance) के २१ फ़रवरी १९३७ के अंक में एक ऐसी ही कंपनी के खुलने का हाल प्रकाशित हुआ है। इसका नाम National Nutriments Ltd. है, और इसका हेड आफिस कलकत्ते में रहेगा। इससे जान पड़ता है कि लोगों का ध्यान अब इस ओर आकर्षित होरहा है। संभव है इसकी देखादेखी शीघ्र ही और भी कंपनियाँ खुल जाँय। लक्षण अच्छे हैं। यदि ढंग से काम होसके तो आशा है कि निकट भविष्य में इस देश को बाहर से दूध मँगाने की आवश्यकता बिलकुल न रह जायगी ॥लेखक॥

मखनिया दूध तथा मलाई उतारा दूध
(Skimmed milk and Butter milk)

दूध को मथ कर मक्खन निकाल लेने के पश्चात् जो दूध बच जाता है उसे मखनिया दूध कहते हैं। अंग्रेजी में इसी को बटर-मिल्क या सेपेरटेड मिल्क (Butter-milk or Seperated milk) के नाम से पुकारते हैं। इसे यदि ताज़ा ही पिया जाय तो अत्यंत लाभकारी और पौष्टिक होता है। चिकनाई का अंश इसमें अवश्य कम हो जाता है, किन्तु इसकी प्रोटीड स्वाभाविक दूध की प्रोटीड की अपेक्षा बहुत जल्दी पचती है। साथ ही यह सस्ता भी ख़ूब पड़ता है। इसमें पदार्थों का मिश्रण साधारणतः इस प्रकार रहता है:—

प्रति सौ भाग दूध में

पानी का भाग	...	९१·३
प्रोटीन ,,	...	३·१
चर्बी ,,	...	·५
दूध की चीनी ,,	...	४·०
क्षार भाग	...	७
		१००

इसी प्रकार जिस दूध में से मलाई अलग कर ली गयी हो उसे **मलाई उतारा दूध** कहते हैं। यह भी उपरोक्त मखनिया दूध के समान ही पौष्टिक और सस्ता खाद्य-पदार्थ है। यह दो प्रकार का होता है:—(१) कच्चा; और (२) उबाला हुआ। कच्ची रीति से मलाई उतारने का उपाय यह है :—कच्चा दूध लेकर किसी छिछले बर्तन में फैला दिया जाता है और उसे ठंडी जगह में रख दिया जाता है। लगभग १२ या १४ घंटे में उसकी अधिकांश चिकनाई ऊपर को आ जाती है और

अत्यन्त कोमल किन्तु गाढ़ी मलाई के रूप में जम जाती है। इसे चम्मच से अलग कर लिया जाता है। शेष जो दूध बचता है वही मलाई उतारा हुआ दूध है। अंग्रेजी में इसे "स्किम्ड मिल्क" (Skimmed milk) कहते हैं। योरोपीय देशों में मक्खन बनाने के लिए प्रायः इसी रीति से पहले मलाई उतारी जाती है और तब उसे मथकर मक्खन निकालते हैं। (२) हमारे देश में मलाई प्रायः दूध को उबाल कर उतारी जाती है। इसके लिए दूध कढ़ाई में डालकर चूल्हे पर चढ़ा दिया जाता है और नीचे धीमी आँच जला दी जाती है। ज्यों-ज्यों दूध चुरता है त्यों-त्यों उसके ऊपर मलाई पड़ती जाती है। एक आदमी इस मलाई को बार-बार सींक से हटा कर कढ़ाई की दीवार पर चढ़ाता जाता है। इस प्रकार थोड़ी देर में दूध की अधिकांश चिकनाई मलाई के रूप में ऊपर खिँच आती है। शेष जो दूध बच रहता है वही मलाई उतारा हुआ दूध है। इस प्रकार के दूध को जमा कर इस देश में प्रायः दही बना लिया जाता है, जो शहरों में अच्छे भाव से बिका करता है।

कच्चे दूध से मलाई निकल जाने पर पदार्थों का मिश्रण प्रति सौ भाग दूध में प्रायः इस प्रकार पाया जाता है:—

जल भाग ...	९१·२०
चर्बी	·५०
प्रोटीन	३·००
दूध की चीनी ...	४·६०
क्षार भाग ...	०·७०
	१००·०

उबाले हुए दूध में पानी का जितना भाग जला दिया जाता है उसी हिसाब से अन्य पदार्थों का औसत उसमें बढ़ जाता है।

मक्खन या मलाई निकले हुए दूध को अधिकांश लोग प्राय: अश्रद्धा की दृष्टि से देखा करते हैं, किन्तु ऊपर के आँकड़ों से विदित है कि चर्बी के सिवाय शेष सभी आवश्यक पदार्थ इसमें काफ़ी परिमाण में पाये जाते हैं। अतएव यदि थोड़ी सी चिकनाई इसके साथ और खा ली जाय तो यह पूर्ण स्वाभाविक दूध का काम दे सकता है। अभी हाल में दक्षिण भारत के कोनूर नामक स्थान में पौष्टिकता-अन्वेषण प्रयोगशाला (Nutrition Research Laboratories Coonoor) के वैज्ञानिकों ने इंडियन-रिसर्च फ़ंड एसोसियेशन (Indian Research Fund Association) की ओर से इस प्रकार के दूध की परीक्षा मिशन-स्कूल के लड़कों पर की थी।* लड़कों की संख्या १२२ थी, जिनमें से अधिकांश की अवस्था ११ वर्ष से लेकर १५ वर्ष तक थी। सब लड़के उसी स्कूल के बोर्डिंग हाउस में रहते थे और भोजन के लिए चावल, बाजरा तथा थोड़ी सी साग भाजी पाया करते थे। दूध उन्हें बिल्कुल नहीं मिलता था। वैज्ञानिकों ने उन लड़कों को पहले तौल नाप कर दो बराबर बराबर भागों में विभक्त कर दिया। तत्पश्चात् एक भाग के हर एक लड़के को पूर्वोक्त भोजन के अतिरिक्त आधी छटाँक विलायती मखनिया दूध का चूर्ण। (one ounce of Newzealand Skimmed milk powder) दिया जाने लगा। इस चूर्ण को गरम पानी में मिला देने से पाव भर साधारण मखनिया दूध तैयार होजाता था। यही उन लड़कों को पिलाया जाता था। दूसरे भाग में जो लड़के थे उनके भोजन में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। केवल थोड़ा सा बाजरा उन्हें अधिक दिया

---

*Vide 'Hindustan Times' of Delhi dated 21st January 1937.

जाने लगा, जिससे .खूराक का परिमाण दोनों भागों में बराबर रहे। यह प्रयोग १४ सप्ताह तक बराबर होता रहा। तत्पश्चात् हर एक लड़के की तौल और नाप ली गयी। देखा गया कि दूध पीनेवाले हरएक लड़के की तौल में ४·७ पाउंड की वृद्धि हुई तथा उँचाई भी ०·६१ इंच अधिक हुई। किन्तु जिन्हें दूध नहीं मिलता था उनकी तौल और उँचाई क्रमशः केवल २·१ पाउंड तथा ०·३५ इंच बढ़ी। अब उपरोक्त दोनों भागों को बदल दिया गया। जो लड़के दूध पारहे थे उनका दूध बंद करके वही दूध दूसरे भाग के लड़कों को दिया जाने लगा। पहले भाग के लड़कों को अब वही पुरानी .खूराक कर दी गयी जो अभी तक दूसरे भाग के लड़कों को दी जाती थी। दस सप्ताह के बाद देखा गया कि दूध पाने वाले लड़कों की तौल और ऊँचाई में औसत वृद्धि क्रमशः ३·०७ पाउंड और ०·६६ इंच हुई। किन्तु दूध न पीने वालों में यह वृद्धि केवल १·१० पाउंड और ०·४३ इंच ही हुई।

इसके बाद उन वैज्ञानिकों ने कई दूसरे बोर्डिंग हाउस के लड़कों पर भी उपरोक्त प्रयोग किये। किन्तु परिणाम सर्वत्र प्रायः वही निकला जो ऊपर बतला चुके हैं। इस दूध के व्यवहार से लड़कों के स्वास्थ्य में सुधार और चेहरे पर चमक आगयी, तथा जो छोटी-मोटी बीमारियाँ उन्हें दिन-रात घेरे रहा करती थीं उनसे भी छुटकारा मिल गया। इससे सिद्ध होता है कि भारतीयों की .खूराक में, जो प्रायः उपरोक्त दक्षिणी लड़कों की .खूराक से मिलती हुई होती है, पौष्टिकता की कमी रहा करती है, और मखनिया अथवा मलाई उतारे दूध के सेवन से यह कमी बहुत कुछ पूरी हो जाती है। मखनिया दूध साधारण दूध की अपेक्षा बहुत सस्ता बिकता है। अतएव इस निर्धन देश के लिए, जहाँ अधिकांश लोगों को किसी भी प्रकार का दूध नहीं

नसीब होता, मखनिया या मलाई उतारा दूध एक बढ़िया और पौष्टिक ख़ूराक है। किंतु छोटे बच्चों को एक-मात्र इसी दूध के आधार पर रखना उचित नहीं, कारण कि ऐसे दूध में प्रायः 'ए' नामक वाइटेमिन (Vitamin A) बिल्कुल नहीं पाया जाता, जो बच्चों की शारीरिक वृद्धि के लिए एक आवश्यक वस्तु है। यदि ऐसे दूध पर छोटे बच्चों को रखना ही पड़े तो साथ में थोड़ा सा काडलिवर तेल भी उपरोक्त वाइटेमिन की पूर्ति के लिए देना पड़ेगा। किंतु अनाज खाने वाले बड़े बच्चों के लिए अनाज के साथ इस प्रकार का दूध बड़ा लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

नवां अध्याय

—❦:✻:✻:❦—

दूध से बने हुए अन्य पदार्थ

मक्खन

मक्खन को संस्कृत में नवनीत कहते हैं। इस देश में मक्खन बनाने की क्रिया बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। यहाँ तक कि ऋग्वेद में भी (जिसकी गणना संसार के सब से प्राचीन ग्रन्थों में की जाती है) इसकी चर्चा दिखाई देती है। ऋग्वेद में दही मथने के लिए चतुः-श्रृंग, दशश्रृंग आदि कई प्रकार की मथानियों का उल्लेख है। योरोपीय देशों में आज से ६० या ७० वर्ष पहिले मक्खन बनाने की तरकीब किसी को भी न विदित थी। उस समय वहाँ मक्खन निकालने के लिए कच्चे दूध को केवल ठंडी जगह में रख दिया जाता था, जिससे दो या तीन दिन में उसकी सारी क्रीम ऊपर आ जाती थी। इसी क्रीम को सड़ा कर चमड़े की थैली या मशक में भर लेते थे और उसे हिला झुला कर मक्खन निकालते थे। सन् १८७७ में पहले-पहल मक्खन निकालने के यंत्र का आविष्कार हुआ। तत्पश्चात् अनेकों प्रकार के यंत्र आविष्कृत हुए। और इस समय तो सैकड़ों प्रकार की ऐसी मशीनें बन गयी हैं जिनसे बड़ी आसानी के साथ मक्खन तैयार होता है।

भारतवर्ष में देशी ढंग से मक्खन निकालने के लिए एक लकड़ी की मथानी काम में लायी जाती है। इसमें एक लम्बा सा डंडा रहता

है, जिसके एक सिरे पर लकड़ी के टुकड़ों की बनी हुई चरख़ी सी लगी रहती है। इसी चरख़ी को दूध या दही में छोड़ कर डंडे को रस्सी के सहारे नचाते हैं, जिससे दही या दूध ख़ूब मथ उठता है और उसकी सारी चिकनाई अलग होकर ऊपर तैर आती है। बस, इस चिकनाई को निकाल लेते हैं। यही मक्खन है। इस प्रकार दूध या दही को मथने से वह बहुधा गरम हो जाया करता है। इसलिए थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसमें पानी के छींटे भी देते जाते हैं, जिससे मक्खन के अलग होकर ऊपर तैरने में सरलता पड़ती है।

दूध से अथवा दूध की क्रीम से निकाला हुआ मक्खन साधारण भाषा में मक्खन के नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु दही या दही की क्रीम से जो मक्खन निकलता है। वह मसका या नैनूँ के नाम से पुकारा जाता है। दूध का मक्खन प्रायः वैसे ही मिश्री बूरा, या चीनी के साथ अथवा रोटी में लगा कर खाया जाता है, किन्तु नैनूँ को आग में तपाकर प्रायः घी निकालते हैं और तब व्यवहार करते हैं। भारतवर्ष में बहुत सा दूध इसी प्रकार नैनूँ और घी बनाने के काम में आता है। किन्तु पाश्चात्य देशों में घी खाने की चाल बिल्कुल नहीं है। वहां लोग रोटी के साथ प्रायः मक्खन ही लगाकर खाते हैं। मक्खन का पानी निचोड़ कर उसमें निमक मिला देने से वह बहुत दिन तक अच्छा और ताज़ा बना रहता है। आजकल की बड़ी-बड़ी डेयरियों में इसी प्रकार मक्खन को डब्बों में सुरक्षित करके बाहर भेजने की चाल है। यह मक्खन बाज़ार में सौदागरों के यहां प्रायः महीनों तक रखकर बेचा जाता है, किन्तु बिगड़ता नहीं।

साधारणतः शुद्ध और बढ़िया मक्खन में पदार्थों का मिश्रण इस प्रकार पाया जाता है।

प्रति सौ भाग मक्खन में

पदार्थों के नाम	औसत भाग या मात्रा
पानी	१४·२५
प्रोटीन	०·६८
चर्बी	८३·११
कार्बोहाइड्रेट्स (दूध की चीनी इत्यादि)	०·७६
क्षार	१·२०
	१००·००

वैद्यक-शास्त्र के मत से मक्खन शरीर के लिए बड़ा हितकारी, पुष्टिजनक, बलकारक और अग्निवर्धक होता है। भावप्रकाश के पूर्वखंड में लिखा है:—

दुग्धोत्थं नवनीतं तु चक्षुष्यं रक्तपित्तनुत्।
वृष्यं बल्यमतिस्निग्धं मधुरं ग्राहि शीतलम्॥

अर्थात्, "दूध से निकला हुआ मक्खन नेत्रों को लाभदायक रक्त-पित्त को नाश करने वाला, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, अत्यंत चिकना, मधुर, रुचिकर और ठंडा होता है।" शरीर की कृशता को दूर करने और बल बढ़ाने के लिए यह एक बढ़िया रसायन है। पतले-दुबले मनुष्य यदि कुछ दिनों तक इसको लगकर सेवन करें तो मोटे हो सकते हैं। शिर पर मक्खन को मलने से दिमाग़ में तरी पहुँचती है और मस्तिष्क बलवान हो जाता है। इसी प्रकार शरीर में भी इसकी मालिश करने से उज्वलता और कांति बढ़ती है।

योरोप और अमेरिका में आजकल अन्य प्रकार की चिकनाइयों की अपेक्षा मक्खन की श्रेष्ठता के विषय में बड़ा मतभेद फैला है।

कुछ लोगों का कहना है कि मक्खन सब प्रकार के तेल और चर्बी की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और गुणकारी है। दूसरे लोग यह बात नहीं मानते। वे सब प्रकार की चिकनाइयों को एक ही दरजे में रखते हैं। हमें इस प्रश्न पर विचार करने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि योरोप और अमेरिका में मक्खन की अपेक्षा मारगेरीन (चर्बी से बना हुआ एक प्रकार का सस्ता पदार्थ जो मक्खन की तरह रोटी में लगाकर खाया जाता है) का प्रचार अत्यधिक है और ग़रीबों में प्रायः यही व्यवहार किया जाता है। मारगेरीन बनाने के अनेकों बड़े-बड़े कारखाने वहाँ चल रहे हैं और इसका वहाँ बड़ा भारी कारबार होता है। अतएव मारगेरीन के हिमायती मक्खन के विरुद्ध आवाज़ उठाने में बहुत कुछ स्वार्थ से भी प्रेरित हो सकते हैं। जो हो, मारगेरीन के हिमायतियों का कहना इस प्रकार है :—"जितनी शारीरिक उष्णता और शक्ति एक प्रकार की चिकनाई से मिल सकती है उतनी ही हर एक दूसरी चिकनाई से भी मिल सकती है। अतएव इस विचार से सब प्रकार के तेल, जानवरों की चर्बी, तथा मक्खन बिल्कुल बराबर हैं। किंतु मक्खन में दूध की तरह कुछ हानिकारी बीजाणुओं अथवा रोगाणुओं की उपस्थिति का भय है, परंतु मारगेरीन इस भय से स्वतंत्र है।" इसके विरुद्ध कुछ जर्मन वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि जो चिकनाई जितने ही कम तापमान में पिघल जाती है वह उतनी ही अधिक शरीर के लिए ग्राह्य है। इस मत से जो चिकनाई शरीर के तापमान से कम दरजे की गरमी में पिघल जाती है वह सैकड़ा पीछे प्रायः ९७ या ९८ भाग शरीर के काम में आ जाती है। उसका केवल दो या तीन फ़ी सदी भाग बेकार जाता है। किंतु विलायती घी अथवा जानवरों की चर्बी आदि (जिनमें Stearic acid का अंश अत्यधिक मात्रा में पाया

जाता है) चिकनाइयों का अधिक से अधिक केवल १४ फ़ी सदी भाग शरीर के काम में आता है, शेष ८६ फ़ी सदी केवल बोझ की तरह आँतों में पड़ा रहता है और बेकार बाहर निकल जाता है। अतएव सुपाचकता की दृष्टि से क्रमानुसार चिकनाइयों को इस प्रकार रख सकते हैं: (१) मक्खन; (२) नारियल का तेल; (३) सब प्रकार के तेल जिनमें 'ओलीक' एसिड (Oleic acid) की मात्रा अधिक पाई जाती (४) विलायती घी (Vegetable ghee) एवं जानवरों की चर्बी।

हमारे देश में मक्खन की श्रेष्ठता सर्वमान्य है तथा चर्बी आदि से निर्मित वस्तुएँ घृणित समझी जाती हैं। अतएव इस विषय में यहाँ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं।

मक्खन में वाइटेमिन ए और डी जाति के पाये जाते हैं। बाज़ारू मक्खन में कभी-कभी ओलियोमारगेरीन (Oleomargarine) का मेल दिया रहता है। इसकी पहचान के लिए मक्खन को पिघला कर उसमें रूई की बत्ती डुबो ले और जलाकर देखे। यदि शुद्ध मक्खन होगा तो उसमें से अच्छी सुगंध निकलेगी और यदि उसमें चर्बी का मेल होगा तो दुर्गन्ध आवेगी।

घी

मक्खन या नैनूँ को अग्नि में तपाने से घी निकलता है। किसी बर्तन में नैनूँ या मक्खन को रखकर आँच पर रख देते हैं। इससे उसका जल भाग जल कर उड़ जाता है। शेष दूसरे अंश जल कर नीचे बैठ जाते हैं। केवल चिकनाई वाला भाग स्वच्छ तरल रूप में दीखने लगता है। बस, इसी को छान कर ठंडा कर लिया जाता है। यही शुद्ध घी है।

पाश्चात्य देशों में घी खाने की चाल नहीं है। किंतु हमारे भारतवर्ष में घी का व्यवहार आदि काल से चला आता है।

ऋग्वेदादि आर्ष ग्रंथों में घी का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है। शास्त्रों में भी 'घृतमायुः पुरुषस्य' तथा 'आयुर्मूलम् हविः' (अर्थात् घृत ही मनुष्य का जीवन है) इत्यादि वाक्यों से घी की प्रशंसा की गयी है। धार्मिक दृष्टि से घी एक अत्यंत पवित्र पदार्थ माना जाता है। पंचगव्यों में इसकी गणना सर्वप्रथम की गयी है। यज्ञ-हवनादिक धर्म के कोई भी कार्य्य बिना घी के सम्पादित नहीं हो सकते। अच्छे और शुभ अवसरों पर हिंदुओं के यहाँ घी के दीपक जलाने का विधान है।

शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से घी का उपयोग बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है "गव्यहीनं कुभोजनम्" अर्थात् 'घी के बिना भोजन अच्छा नहीं'। तार्किकश्रेष्ठ चारवाक ने तो घी की सिफ़ारिश करते हुए यहाँ तक लिखा मारा है कि:—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः॥

अर्थात् "जब तक जियो सुखपूर्वक जियो और ऋण लेकर भी घी पिया करो; क्योंकि मर कर भस्म हो जाने के बाद यह देह फिर कहाँ आती है।"

प्रसिद्ध वैद्यक ग्रंथ वाग्भट्ट में लिखा है:—

गव्यं घृतं विशेषेण चक्षुष्यं वृष्यमग्निकृत्।
स्वादुपाककरं शीतं वात-पित्त-कफापहम्॥

अर्थात् "गाय का घी विशेष रूप से नेत्रों को हितकारी, वृष्य, अग्निदीपक, पाक में मधुर, शीतल, तथा वात पित और कफ को नाश करने वाला है।" शरीर में बल और वीर्य बढ़ाने तथा बहुत से कष्टसाध्य रोगों को अच्छा करने के लिए अनेकों आयुर्वेदोक्त

औषधियाँ घी के ही संयोग से तैयार की जाती हैं। च्यवनप्राश, अमृतप्राश, अशोकघृत, पुष्टिघृत, इत्यादि अनेकों प्रसिद्ध-प्रसिद्ध औषधियाँ सदैव घी से ही तैयार होती हैं और वैद्यों एवं कविराजों के यहाँ बड़े दाम से बिका करती हैं। पुरानी और कठिन खाँसी में तथा निमोनिया के रोग में वैद्य लोग प्रायः आक के पत्तों को घी में चुरुवा कर छाती पर सेंक कराते हैं तथा उसकी मालिश भी छाती पर कराया करते हैं।

भारतीय ढंग के भोजन में घी को अत्यधिक आदर प्राप्त है। इसके द्वारा सैकड़ों प्रकार के पकवान, मिठाई, हलुवा, पूरी, कचौड़ी इत्यादि तैयार होते हैं। भारतवर्ष में प्रायः जितना दूध पैदा होता है उसका अधिकतर भाग घी और मिठाइयों के ही रूप में ख़र्च हुआ करता है। इस पर भी बहुत सा घी बाहर से आता है। भारतवर्ष के आयात-निर्यात का सरकारी लेखा देखने से जान पड़ता है कि सन् १९३०-३१ में यहाँ ५५०१२) रुपये का, सन् १९३१-३२ में १३१५५७) रुपये का, सन् १९३२-३३ में २५०५६) रुपये का, सन् १९३३-३४ में १४६२१) रु० का तथा सन् १९३४-३५ में १४९११) रु० का घी विदेशों से मँगाया गया था।

इतने पर भी घी की देश में बहुत बड़ी कमी रहती है। करोड़ों भारतीयों को घी साल में एक बार भी नसीब नहीं होता। इसका कारण केवल घी का अभाव और उसके दाम में महँगापन है। अकबर के समय में इसी देश में एक रुपये का सोलह सेर घी मिलता था। इस समय भी बहुत से ऐसे वृद्ध मौजूद हैं, जिन्होंने अपने लड़कपन में रुपये का अढ़ाई या तीन सेर तक घी खाया था। परन्तु "तेहि नो दिवसागताः"। अब तो इस भाव में हमें खाने लायक़ तेल भी नसीब नहीं होता। जो घी इस समय बाज़ार में मिलता भी है

वह केवल नाम के लिए घी है। वास्तव में उसमें महुए का तेल, नारियल का तेल, भाँति-भाँति के जानवरों की चर्बी, तथा नक़ली घी (Vegetable ghee) आदि की भरमार रहती है। कभी-कभी तो इसमें साँप की चर्बी तथा और भी कितनी ही घृणित वस्तुएँ मिली हुई पायी जाती हैं। यह मिलावट बहुधा यहाँ तक बढ़ जाती है कि उसमें शुद्ध घी का भाग दो-चार फ़ीसदी भी नहीं रहने पाता। प्रतिवर्ष यहाँ लाखों रुपये की चर्बी, नक़ली घी इत्यादि मिलावट के समान विदेशों से मँगाये जाते हैं। सन् १९३०-३१ में यह सामान १,०६,०३,३६६) रुपये का बाहर से आया था। इस समय नक़ली घी तैयार करने के लिए कितने ही कारख़ाने भारतवर्ष में भी खुल चुके हैं। अतएव गतवर्ष (१९३४-३५ में) यह सामान बाहर से बहुत कम मँगाया गया था—केवल १,३५,६२४) रु० का आया था। किंतु घी की मिलावट में पहले की अपेक्षा इस समय भी कमी नहीं बल्कि और उन्नति होगई है। अब तो नक़ली घी में असली घी की सी सुगंध और स्वाद लाने वाले कुछ ऐसे मसाले भी चल पड़े हैं कि उनके कारण असली और नक़ली घी की पहचान ही करना कठिन हो गया है।

पनीर

यह एक प्रकार से दही का छेना है। योरोपीय देशों में इसका बड़ा आदर है। इसके बनाने की रीति इस प्रकार है:—कच्चे दूध को एक बरतन में लेकर उसमें बछड़े की आँत से निकला हुआ रेनेट (Rennet) नामक एक पदार्थ छोड़ दिया जाता है। यह रेनेट नाम का पदार्थ बाज़ार में चूर्ण, गोली एवं तरल रूप में बिका करता है। इसे छोड़ने से दूध का केसिन अर्थात् छेना तत्काल जम जाता है और तोड़ अलग हो जाता है। तब उसे एक साफ़ कपड़े में बाँधकर

किसी ऊँची जगह पर टाँग देते हैं, जिससे तोड़ का सारा पानी टपक-टपक कर निकल जाता है। इसके पश्चात् छेने को निमक मिलाकर मशीन में अथवा किसी अन्य प्रकार से ख़ूब दबाते हैं। इससे उसका रहा-सहा पानी भी निचुड़ जाता है। तब उसे हफ़्तों रख कर सड़ाते हैं। इससे दूध की चीनी वाला कुल भाग खटाई के रूप में बदल जाता है, तथा केसिन का अंश भी रासायनिक क्रिया द्वारा विकृत रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार पनीर को पूर्ण रूप से परिपक्व होने में एक दो सप्ताह से लेकर कभी-कभी महीनों लग जाते हैं। जब पनीर पूर्ण रूप से पक कर अर्थात् सड़ कर तैयार हो जाता है तो उस में एक विशेष प्रकार का गंध और स्वाद पैदा हो जाता है, जो केवल पनीर खाने वालों को ही पंसद आ सकता है। जिन्हें इस वस्तु के खाने की बिल्कुल आदत नहीं है वे इसकी गंध से ही भाग खड़े होंगे।

उपरोक्त रीति से तैयार की हुई पनीर में प्रायः निम्नलिखित पदार्थ पाये जाते हैं:—प्रोटीन; चर्बी, थोड़ा निमक, फ़ासफ़ेट आफ़ लाइम; तथा पानी। किन्तु इनकी मात्रा में बहुधा बड़ा हेर-फेर रहता है जैसा कि नीचे देखने से विदित होगा।

पदार्थों के नाम	कम से कम मात्रा	अधिक से अधिक मात्रा
प्रोटीन	१५°|०	३५°|०
चर्बी	२०°|०	३०°|०
निमक इत्यादि खनिज पदार्थ	४¼°|०	७°|०
पानी	३०°|०	६२°|०

पनीर बनाना एक कारीगरी का काम है। वास्तव में यह अपने ढंग की एक स्वतंत्र कला ही समझी जाती है। अतएव इसके लिए कुछ ट्रेनिंग और अनुभव की आवश्यकता है। जिस प्रकार हमारे देश

में आगरे के पेठे और दाल-मोठ तथा मथुरा की रबड़ी और खुर्चन प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार योरोप में भी कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ की बनी हुई पनीर बड़ी नामी समझी जाती है। इङ्गलैंड के सोमरसेट शायर प्रांत में चेड्ढा नामक स्थान की बनी हुई पनीर इसी प्रकार बहुत प्रसिद्ध है।

आजकल जो पनीर बाज़ारों में बिका करती है वह प्रायः चार प्रकार की हुआ करती हैं:—(१) साधारण दूध से बनी हुई; (२) साधारण दूध में मलाई डाल कर बनाई हुई; (३) मलाई उतारे दूध से बनी हुई; तथा (४) मारगेरीन से तैयार की हुई। मारगेरिन से बनी हुई पनीर की भी दो क़िस्में होती हैं—(१) मक्खन का मेल देकर; तथा (२) केवल मारगेरीन से बनी हुई। पौष्टिकता के विचार से पनीर एक उत्तम खाद्य पदार्थ समझा जाता है। योरोप और अमेरिका में इसका बहुत अधिक आदर है। वहाँ के लोग इसे रोटी, मक्खन और शराब के साथ बड़े चाव से खाया करते हैं। इस देश में भी विलायती ढंग का खाना खानेवाले लोग प्रायः पनीर को बहुत पसंद करते हैं। इसीलिए यहाँ हर साल लाखों रुपये का पनीर विदेशों से आया करता है। अभी गतवर्ष सन् १९३५-३६ में ८,४३, ३९२) रुपये का पनीर बाहर से भारतवर्ष में मंगाया गया था। अस्तु इस देश में अभी पनीर के कारख़ाने खोल कर लाभ उठाने की बहुत कुछ गुंजाइश है। पनीर बनाने में प्रायः गाय के बछड़ों की आँत काम में लायी जाती है, इसलिए हिन्दू लोग इससे परहेज़ रखते हैं। किन्तु यदि बछड़ों की आँत के स्थान में किसी एसिड या खटाई का व्यवहार किया जाय तो उससे किसी को परहेज़ नहीं हो सकता। भारतवर्ष में भी कुछ डेयरीवाले पनीर तैयार करते हैं, किन्तु जहाँ तक विदित है सब जगह यही रेनेट अर्थात्

बछड़ों की आँत से निचोड़ी हुई वस्तु ही काम में लाई जाती है। पनीर को यहाँ लोकप्रिय बनाने के लिए रेनेट के स्थान में कोई दूसरी वस्तु उपयोग करने की आवश्यकता है।

मलाई तथा रबड़ी या बासौंधी

कढ़ाई में दूध को गरम करने से उसकी सारी चिकनाई ऊपर को आजाती है और एक गाढ़ी मोटी तह में जमा हो जाती है। इसी को अलग करते जाते हैं। बस यही दूध की **मलाई** है। उत्तर भारत के प्रायः सभी स्थानों में यह मलाई हलवाइयों की दूकान पर बिका करती है। संस्कृत में इसे संतानिका कहते हैं। वैद्यक मत से यह मलाई शीतल गुरुपाक, तृप्तिदायक, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, पुष्टिकारक, कफ को बढ़ाने वाली तथा वायु, पित्त और रक्तविकार की नाशक है।

दही के ऊपर भी इसी प्रकार मलाई की पर्त जम जाती है। इसे दही की मलाई कहते हैं। वैद्यक मत से यह मलाई गुरुपाक, शुक्रवर्धक, वायु नाशक, वस्तिशोधक तथा पित्त एवं कफ को बढ़ाने वाली है।

रबड़ी बनाने के लिए दूध को मीठा मिलाकर एक छिछली कढ़ाई में गरम करते हैं। आँच धीमी रक्खी जाती है। दूध के ऊपर जो मलाई जमती जाती है उसे अलग निकाल कर रखते जाते हैं। अंत में जो थोड़ा सा गाढ़ा दूध बच जाता है उसी में सब मलाई फिर से मिला कर औंटा डालते हैं। बस, बढ़िया रबड़ी तैयार हो जाती है। इसी को बासौंधी भी कहते हैं। यह रबड़ी अत्यंत स्वादिष्ट, चिकनी, और पुष्टिकारक होती है। किन्तु पचती देर से है। उत्तर भारत में हलवाइयों की दूकान पर यह भी मलाई

के साथ सर्वत्र बिका करती है। किन्तु मथुरा की रबड़ी सारे देश में प्रसिद्ध है।

दूध की मलाई से मलाई के लड्डू पूरी आदि कई प्रकार की मिठाइयाँ भी बनाई जाती हैं।

दही

जैसा की बीजाणुओं का वर्णन करते हुए हम अन्यत्र बतला चुके हैं, दूध को दही के रूप में जमा देने का काम कुछ विशेष प्रकार के दुग्धजातीय बीजाणुओं द्वारा होता है। इनमें सब से उपयोगी और प्रसिद्ध बीजाणु 'लैक्टिक एसिड वेसाइल' (Bacterium lactis acidi of Hueppe) के नाम से विदित हैं। ये बीजाणु पास्ट्युराइज़ किये हुए दूध को प्राय: ८५°F की गरमी में १४ या १५ घंटे के अंदर बड़ा सुंदर और स्वादिष्ट दही बना देते हैं। उपरोक्त दूध में इनके बढ़ने से कुछ ऐसी रासायनिक क्रिया होती है जिससे दूध का चीनी वाला भाग लैक्टिक एसिड के रूप में बदल जाता है और उसी से वह दूध जम कर दही हो जाता है। विलायती डेयरियों में प्राय: हर जगह इसी प्रकार दही जमाया जाता है।

हमारे देश में दही जमाने की विद्या अति प्राचीन काल से विदित है। दूध को उबाल कर कुछ गरम रहते उसमें थोड़ा सा दही जामन के लिए मिला दिया जाता है, जिससे लगभग १९ या २० घंटे में दही जम कर तैयार हो जाता है। किंतु इस प्रकार के जामन में प्राय: कई जाति के बीजाणु मिले रहते हैं, जिससे दही सदा एक सा नहीं जमता। कभी-कभी उसमें कुछ ऐसी जाति के बीजाणु भी मिले रहते हैं जो खटास के साथ-साथ गैस उत्पन्न करते हैं। इससे दही पानी छोड़ देता है और खट्टा हो जाता है तथा उसमें बुलबुले भी पैदा हो जाते हैं।

जाड़े के दिनों में भी दही जमाने में यहाँ कठिनाई हुआ करती है। कभी दही जमता ही नहीं, और कभी जमता है तो अधूरा जमता है। वैज्ञानिक विधि से काम लेने पर ये सब कठिनाइयाँ मिट जाती हैं और सदैव एकसा बढ़िया और स्वादिष्ट दही जमता है।

इधर कुछ दिनों से योरोप और अमेरिका वालों का ध्यान दही के गुणों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। अतएव वहाँ इसका प्रचार उत्तरोत्तर बड़ी तेज़ी के साथ बढ़ता जा रहा है। विशेषकर जर्मनी और बल्गेरिया में इसका अध्ययन बहुत ही गंभीरता के साथ हुआ है। कितने ही बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने जर्मनी में केवल दही बनाने के कारख़ाने खोल रक्खे हैं, जिनमें वैज्ञानिक ढंग से बहुत बढ़िया दही तैयार किया जाता है और "जाघर्ट" (Joghurt) के नाम से ख़ूब बिका करता है। बल्गेरिया में भी भेड़, बकरी, गाय और भैंस सभी जानवरों का दही तैयार होता और बिकता है। इनके दही तैयार करने का ढंग यह है:—दूध में जामन देने के लिए ये लोग बीजाणुओं का एक विशेष प्रकार का मिश्रण काम में लाते हैं जो 'माया' (maya) के नाम से बाज़ार में बिकता है। इसमें 'लैक्टिक एसिड बेसाइल' के अतिरिक्त कुछ अन्य चुने हुए बीजाणुओं का मिश्रण भी रहता है जो 'बैसाइलस बल्गेरिकस' (Bacillus Balgaricus) के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह मिश्रण जर्मनी के कितने ही कारख़ानों में तैयार किया जाता है और बाहर भेजा जाता है। दही जमाने के लिए जितना दूध रहता है उसका बीसवाँ अथवा पचीसवाँ हिस्सा यह मिश्रण ले लेते हैं और उसे पहले थोड़े से गरम और पास्ट्युराइज़ किये हुए दूध में मिलाकर रख देते हैं। दूध की गरमी लगभग ४५°c (=११३°F) तक रहती है। चौबीस घंटे तक बराबर इसी अवस्था में रक्खे रहने से उससे

एक बढ़िया जामन तैयार हो जाता है। अब यह जामन कुल दूध में घोल दिया जाता है। दूध सब पास्ट्युराइज़ ही किया हुआ रहता है और उसकी गरमी भी सदैव ४५°c (=११३°F) के ही लगभग रक्खी जाती है। चार या पाँच घंटे में जब उसमें ३०-३५ फ़ी सदी के लगभग खटास बन चुकती है, तब उसे बरफ़ के पानी में रख कर तत्काल ठंडा कर लेते हैं। इससे अत्यन्त स्वादिष्ट और एकरास दही तैयार हो जाता है।

इस प्रकार से जमाया हुआ दही डाक्टरों की राय में पाचन-प्रणाली को अत्यंत लाभ पहुँचाता है। इससे पेट और आँतों में कई प्रकार के हानिकारी तथा बुढ़ाई पैदा करनेवाले बीजाणु नष्ट होते हैं, जिससे शरीर एक प्रकार से नया और शुद्ध बन जाता है। हमारे देश में भी दही के गुण विद्वानों ने बहुत अधिक कहे हैं। वैद्यक शास्त्र के अनुसार गाय, भैंस और बकरी के दही में निम्नलिखित गुण कहे गये हैं।

गाय का दही :—यह सब दहियों में उत्तम कहा गया है। यह स्वाद में मधुर, रुचिप्रद, पवित्र, बलदायक, अग्निदीपक, स्निग्ध, पुष्टि-कारक और वायु का नाश करने वाला है।

भैंस का दही :—चिकना, भारी, पाक में मीठा, और अभिष्यन्दी होता है, किन्तु वायु, पित्त और रक्त-विकार को नाश करता है।

बकरी का दही :—हलका, ग्राही, त्रिदोषनाशक और अग्निदीपक है। साथ ही श्वास, खाँसी, क्षयरोग, दुर्बलता और बवासीर में हितकारी है।

चीनी मिला हुआ दही वैद्यक ग्रन्थों के अनुसार अत्यंत श्रेष्ठ है, तथा पित्त, रक्त-विकार, तृष्णा और दाह को नाश करता है। गुड़ मिला दही वातनाशक, शुक्रजनक, पुष्टिवर्धक, तृप्तिकारक और भारी

होता है। रात में दही खाना मना है। किन्तु यदि खाना ही हो तो चीनी और जल मिला कर खावे; अथवा शहद, मूँग की दाल, या आँवले के साथ खावे। इसी प्रकार गरमी, बसंत, और 'शरद ऋतु में भी दही खाना मना किया गया है। केवल हेमन्त, शिशिर तथा वर्षा ऋतु में इसका सेवन उत्तम बतलाया जाता है।*

हिकमत के ग्रंथ ख़वासुल-अदविया में दही के विषय में लिखा है कि "यह किसी क़दर तुर्श और सफ़ेद होता है। तासीर में सर्दतर है। सर्द मिज़ाज वालों और मेदे को नुक़सान पहुँचाता है। अगर दही को चेहरे पर मलें तो चेहरे की ख़ुश्की और झाँई को दूर करता है। गर्म मिज़ाजवालों और प्यास को तसकीन देता है। देर में हज़म होता है। रुतबत बढ़ाता है। और वाह को क़ुव्वत देता है।"

दही का पानी या तोड़

बहुत देर तक पड़ा रहने से दही खट्टा हो जाता है और पानी छोड़ देता है। यह पानी शरीर के लिए बड़ा हितकारी है। वैद्यकमत से यह क्लांतिनाशक, बलकारक, लघु, तृप्तिजनक, तथा कफ वायु और तृष्णा का नाश करने वाला है। इसी प्रकार दही की मलाई भी अत्यंत चिकनी, रुचिप्रद और पुष्टिकारक होती है। कहावत है कि—"बकरा तरुन औ' भेड़ा बूढ़, दही का आगिल और मठा का पाछिल अच्छा होता है।" दही के अगले अर्थात् ऊपरी भाग में चिकनाई का अंश अधिक होता है और मठे के नीचे का भाग गाढ़ा रहता है।

तक्र, मठा, या छाछ

पानी मिला कर मथानी से मथे हुए दही को मठा (अर्थात्

*"हेमंते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते।"

मथा हुआ) कहते हैं।* इसी को तक्र या छाछ भी कहते हैं। योरोप में मठा के गुण लोग नहीं जानते और न इसका व्यवहार ही वहाँ किया जाता है। किन्तु भारतवर्ष में इसका आदर प्राचीन काल से होता रहा है और वैद्य लोग इसका सेवन पेट के अनेकों रोगों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से कराया करते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द मठा या छाछ के सेवन पर बहुत ज़ोर दिया करते थे। हरद्वार कांगड़ी के गुरुकुल में उन्होंने हर एक विद्यार्थी के लिए छाछ पीना अनिवार्य कर दिया था। एकबार उनके गुरुकुल में युक्तप्रांत के छोटे लाट सर जेम्स मेस्टन पधारे थे। उस समय स्वामी जी ने उन्हें भी यही छाछ बनाकर पिलाया था। सर जेम्स तथा उनकी पत्नी ने छाछ को बड़े चाव से पिया था और उसकी प्रशंसा मुक्त कंठ से की थी।

भाव प्रकाश में छाछ को बनाने और पीने की विधि इस प्रकार दी हुई है:—"भैंस का गाढ़ा और खट्टा दही लेवे और उसमें चौथाई पानी मिलाकर मिट्टी के बरतन में रई से ख़ूब बिलोवे। तत्पश्चात् उसमें भुनी हुई हींग, निमक, ज़ीरा और तनिक सी राई मिलाकर पी ले। यह छाछ भला किसे पसंद न होगा? ऐसा छाछ रुचिप्रद, अग्नि दीपक अत्यंत पाचक तृप्तिकारक और पेट के समस्त रोगों को नष्ट करने वाला है।"

जिस मठा में से घी पूर्ण रूप से निकाल लिया गया हो वह अत्यंत हलका और पथ्य होता है। जिसमें से थोड़ा घी निकाला गया हो वह अपेक्षाकृत कुछ भारी, वीर्यवर्धक और कफजनक होता

*"जो दही चतुर्थांश पानी के साथ मथा जाता है उसे तक्र कहते हैं और जिसमें आधा पानी पड़ता है उसे उदश्वित कहते हैं।"

है। किन्तु जिसमें से घी बिल्कुल ही नहीं निकाला जाता वह पाक में भारी, गाढ़ा, कफजनक और पुष्टिकारक होता है।

वायु की शांति के लिए खट्टा छाछ सोंठ और सेंधा नमक के साथ पीना चाहिए। पित्त की शांति के लिए चीनी मिला हुआ मीठा छाछ लाभकारी है। तथा कफ की शांति के पीपल, सोंठ और काली मिर्च मिला छाछ उपयोगी होता है।

शीतकाल, मंदाग्नि, और वातरोग में मठा अमृत के समान काम करता है। आँव और संग्रहणी के रोगियों को भी इसका सेवन बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त पेट के समस्त रोग, तिल्ली, वायुशूल, अतिसार, अरुचि, जी मिचलाना, वमन, प्यास, बवासीर, भगंदर, पीलिया, विषमज्वर, एवं सफ़ेद कोढ़ में भी मठे का सेवन कराया जाता है। मठे के सेवन से पेट और आँतों के समस्त कीड़े नष्ट हो जाते हैं और शरीर में स्फूर्ति तथा चेहरे पर रंगत आ जाती है। इन्हीं गुणों को देखकर विद्वानों ने मठे की भरपेट प्रशंसा लिखी है। उदाहरणार्थः—**'सर्व रोगहरं तक्रं,'** अर्थात् 'मठा सब रोगों का हरने वाला है।' **'न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धा प्रभवंति रोगाः,'** अर्थात् 'मठा पीने वाला कभी बीमार नहीं पड़ता और जो रोग मठा के कारण एक बार नष्ट हो चुके हैं वे फिर कदापि नहीं उभड़ने पाते'। तथा **'यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नाराणाम् भुवि तक्रमाहुः'** अर्थात् 'जिस प्रकार देवताओं के लिए अमृत सुखदायक है उसी प्रकार मनुष्यों के लिए इस पृथ्वी पर मठा सुखकारी है।' अस्तु आरोग्य और सुख चाहने वाले प्रत्येक मनुष्य को मठे का सेवन नित्य आवश्यक है। भोजन के उपरांत नित्य थोड़ा सा मठा पी लेने से आहार भली भाँति पच जाता है, पेट शुद्ध रहता है, तथा रोग और शारीरिक क्लेश कभी नहीं घेरने पाते। किंतु

रक्त-पित्त, घाव, भ्रम, मूर्छा आदि रोगों में वैद्यक मत से मठे का सेवन वर्जित है। अतएव इन अवस्थाओं में मठा बिल्कुल न पीना चाहिए।

खोवा

खोवा से अनेकों प्रकार की हिन्दुस्तानी मिठाइयाँ बनती हैं। पेड़ा, बर्फ़ी, दूध के लड्डू, गुझिया, गुलाबजामुन इत्यादि सब खोवा से ही तैयार होते हैं। इस देश में दूध का बहुत अधिक भाग खोवा बनाने के काम में लाया जाता है। खोवा बनाने की रीति इस प्रकार है:—

एक बड़ी और छिछली कढ़ायी में ताज़े दूध को भर कर चूल्हे पर चढ़ा दिया जाया है। नीचे से आग जला दी जाती है। अब जैसे जैसे दूध गरम होकर खौलता जाता है, उसे कमचे से बराबर चलाते रहते हैं। इससे एक तो मलाई नहीं पड़ने पाती और दूसरे दूध जल्दी से गढ़ा जाता है। जब वह खूब गाढ़ा होकर खोए के रूप में आ जाता है, तब उसे नीचे उतार लेते हैं। बस यही खोवा है।

ठीक ढंग से तैयार किया हुआ खोवा रंग में सफ़ेद और खाने में स्वादिष्ठ होता है। इसमें दूध के सभी पौष्टिक तत्व मौजूद रहते हैं। हाँ, उनकी मात्रा में अवश्य भेद पड़ जाता है। खोए का स्वाद सदैव दूध की श्रेष्ठता पर ही निर्भर रहता है। ताज़े और चिकनाई-दार दूध का खोवा बढ़िया होता है। किंतु बाज़ारू खोए में बहुधा गेहूँ या चावल के आटे अथवा अरारूट की मिलावट दी रहती है।

कूमिस (Koumiss)

दूध को सड़ा कर एक प्रकार की शराब बनती है जिसे **'कूमिस'** कहते हैं। देखने में यह अत्यंत फेनीली रहती है और इसमें केसिन

(maltose) तथा डेक्स्ट्रीन (Dextrin) नामक पदार्थों के रूप में बदल जाता है, जो शरीर में आसानी से ग्रहण किये जा सकते हैं। माल्ट तैयार करने के लिए सब अनाजों में जौ ही अधिक पसंद किया जाता है, क्योंकि इसका माल्ट अधिक स्वादिष्ट होता है।

जौ की चुनाई और सफ़ाई

माल्ट तैयार करने के लिए जौ बढ़िया मेल का लिया जाता है, और फिर उसे चाल-पछोर कर साफ़ कर लिया जाता है, तथा उसमें मिले हुए मिट्टी-कचरा और दूसरे अनाजों के बीज चुन कर अलग कर दिये जाते हैं।

जौ को फुलाना

इसके पश्चात् जौ को पानी में भिगो दिया जाता है, जिससे वह अच्छी तरह फूल जाय। इस कार्य के लिए कुछ ख़ास तौर पर बनी हुई टंकियाँ काम में लायी जाती हैं, जिनके अंदर जौ से एक या दो फ़ीट ऊपर तक पानी भरा रहता है। पानी का तापमान लगभग ६८ °F तक रखा जाता है। यह पानी आठ-आठ घंटे के बाद बराबर बदल दिया जाया करता है, जिससे महकने न लगे। किन्तु यदि गरमी अधिक पड़ रही हो तो इसे और जल्दी-जल्दी बदलना पड़ेगा।

ये टंकियाँ आकार में लम्बी होती हैं और इनकी चौड़ाई पेंदे की ओर को तंग होती जाती है। साथ ही पेंदे की ओर से पानी बहाने के लिए एक जाली का भी प्रबंध रहता है, तथा जौ के निकालने के लिए भी एक अलग रास्ता बना होता है।

जौ के फूलने में ऋतु के अनुसार प्रायः चौबीस से लेकर अड़तालीस घंटे तक लगा करते हैं। इस समय इनके दाने ख़ूब फूल-फूल कर बड़े हो जाते हैं और उनमें लगभग ४० से लेकर ५० फ़ी सदी तक

तरी आ जाती है। कुछ पतले और घटिया जाति के दाने जो ऊपर को तैर आते हैं, उन्हें निकाल कर अलग कर दिया जाता है।

अँखुए पैदा करना

पानी में फूल जाने के पश्चात् जौ में अँखुए पैदा करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए तीन प्रकार की रीतियाँ काम में लायी जाती हैं:—(१) गीले दानों को सीमेंट के साफ़ फ़र्श पर फैला दिया जाता है; (२) उसे किसी ऐसे बर्तन में रक्खा जाता है जिसके पेंदे में चलनी की तरह छेद हों (saladin or pneumatic trough system) अथवा (३) किसी घूमते हुए ड्रम के अंदर डाल कर फिराया जाता है (pneumatic drum system)।

किन्तु इन तीनों ही रीतियों में सब से अधिक ध्यान देने योग्य प्रश्न तरी और उष्णता का है, कारण कि इन्हीं दोनों बातों से दानों में इच्छित परिवर्तन पैदा होते हैं। अस्तु, ज्योंही दाने सूखने लगते हैं उन पर पानी का छिड़काव किया जाता है। उष्णता का तापमान लगभग ७५ °F का बनाये रखने के लिए जौ की तह को उलट-पलट कर पतली अथवा मोटी करना पड़ता है। साथ ही उसे हवा खिलाने की भी आवश्यकता पड़ती है।

अँखुए उगाने में ४ से लेकर ७ दिन तक का समय लगता है। जिस समय अँखुए आने लगते हैं, पानी का छिड़काव बंद रखा जाता है और गरमी का तापमान अनुकूल अवस्था पर कर दिया जाता है। अँखुए उचित अवस्था को पहुँच गये या नहीं इसकी ठीक ठीक पहचान दानों के रूप-रंग और अँखुओं की लम्बाई को देखकर केवल विशेषज्ञ ही कर सकता है। यहाँ हम केवल समझने के लिए उसकी साधारण पहचान लिखे देते हैं। उचित अवस्था के अँखुओं

में दाने छूने से मुलायम जान पड़ते हैं; उनके बीच का हिस्सा सफ़ेद पड़ जाता है; तथा अँखुओं की लम्बाई दाने के ¾ के बराबर होती है, और अँखुओं के छोर पर कुछ जड़ीले बाल से निकलते जान पड़ते हैं।

सेंकना और सुखाना

अँखुएदार जौ के दानों को अब सेंक कर सुखाने के लिए उन्हें भट्टे पर चढ़ाया जाता है, जिससे अँखुओं का आगे बढ़ना रुक जाय। भट्टे से ऊपर दो मंज़िल की छोटी कोठरी सी होती है। पहले जौ को ऊपर वाली मंजिल पर एक या दो फुट मोटी तह में फैला दिया जाता है। नीचे की गर्म हवा को ऊपर खींचने और दानों को उलटने-पलटने और चलाने के लिए कलें लगी रहती हैं। इनसे एक या दो दिन तक धीरे-धीरे दानों को सुखाया जाता है। हवा की गर्मी ८०° F से लेकर ११०° F तक रक्खी जाती है। बाद में ऊपरवाली मंज़िल का दरवाज़ा खोल दिया जाता है, जिससे सारा जौ नीचे वाली मंज़िल में गिर पड़ता है। यहाँ कुछ अधिक गर्मी पहुँचाई जाती है। क़रीब १२०° F और १५०° F के बीच में उसका तापमान रक्खा जाता है। इस प्रकार सेंकने में दो दिन और लग जाते हैं। पश्चात् सब दाने एक प्रकार के कलों से चलने वाले सूप में गिरा दिये जाते हैं, जो उनके बाहर निकले हुए अँखुओं और बालों को फटक कर साफ़ कर देता है। इससे सब दाने पूर्ववत् सादे जौ के रूप में दीखने लगते हैं। इसी को अब **माल्ट** कह कर पुकाते हैं।

उपरोक्त रीति से सेंकने में कम अथवा ज्यादा जैसी गर्मी दी जाय और जितने समय तक उसे भट्टे पर रखकर सेंका जाय उसी

के अनुसार माल्ट में रंग भी आता है। अधिक गर्मी के कारण माल्ट के रंग में कालापन आ जाता है। दूध के लिए माल्ट तैयार करने में सदा हलका रंग ठीक समझा जाता है। अतएव इसके लिए यथासंभव बहुत हलकी आँच दी जाती है। साधारणतः १२०°F अथवा इससे भी कम आँच ठीक पड़ती है। यद्यपि ऊपर से देखने में माल्ट साधारण जौ के समान जान पड़ता है, किंतु उसकी भूसी के अंदर दाने पर अँखुए के चिन्ह मौजूद रहते हैं।

लसी तैयार करना

जौ का माल्ट तैयार हो जाने पर उसे चूर करके गेहूँ के आटे की लेई के साथ गूँधना पड़ता है। इस प्रकार के मिश्रण को हम माल्ट की लसी कह कर पुकार सकते हैं। लसी बनाने का उद्देश्य केवल जौ और गेहूँ के प्रोटीड और श्वेतसार (starch) को घुलनशील और सुपाच्य प्रोटीनज एवं कार्बोहाइड्रेट्स में परिवर्तित करना है।

लसी के लिए साधारण तौर पर १० फ़ी सदी जौ का माल्ट तथा ९० फ़ी सदी गेहूँ का आटा लिया जाता है। यदि माल्ट की मात्रा अधिक रक्खी जाय तो अति उत्तम है, किंतु कम मात्रा रखने से श्वेतसार में अभीष्ट परिवर्तन भली भाँति न हो सकेगा।

गेहूँ के आटे का श्वेतसार पानी में छोड़ने से घुलता नहीं और न इस अवस्था में उसमें माल्ट के संसर्ग से कोई रासायनिक परिवर्तन ही पैदा हो सकता है। अतएव आटे को लेई के रूप में उबालना पड़ता है। इससे श्वेतसार के हरएक कण फूल कर फूट जाते हैं और उनपर रासायनिक क्रिया आसानी से हो सकती है। लेई को उबाल कर ठंडा कर लेने के पश्चात् उसमें माल्ट के

मिलाने की अवश्यकता पड़ती है। इसके लिए माल्ट को पहले रोलर मिलों में डाल कर चूर कर दिया जाता है, यद्यपि उनका बारीक आटा नहीं बनाया जाता, कारण कि आटे के रूप में पिस जाने से आगे चल कर उसकी भूसी अलग करने में कठिनाई पड़ती है।

अब इस माल्ट के चूरे को आटे की लेई में अच्छी तरह गूँध कर मिला दिया जाता है, और फिर उसे आध घंटे तक ४५° C (१५८° F) की आँच में तपाया जाता है। इसके पश्चात् गरमी का तापमान प्रति मिनट एक डिग्री सेंटीग्रेड के हिसाब से बढ़ाते हुए ७०° C (१५८° F) तक पहुँचाना पड़ता है, और फिर इसी ७०°C की आँच में एक घंटे तक उसे गरम करना पड़ता है।

लसी में से भूसी निकालना

जब गरम होकर लसी तैयार हो जाती है तो जौ की तमाम भूसी नीचे पेंदे में बैठ जाती है। अतएव लसी का घोल ऊपर ही ऊपर उँडेल लिया जाता है। यह घोल शरीर के लिए एक बड़ा ही पौष्टिक पदार्थ होता है। इसमें गेहूँ और जौ के प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स इत्यादि सभी पौष्टिक पदार्थ अत्यंत सूक्ष्म भागों में विभक्त होकर बड़े सुपाच्य और बलवर्द्धक बन जाते हैं। अतएव अब इन्हें दूध में मिलाने की बारी आती है।

दूध के साथ मिश्रण

लसी में मिलाने के लिए दूध सदैव ताज़ा और बढ़िया क़िस्म का लिया जाता है। इसकी मात्रा ५५ भाग लसी में ४५ भाग दूध अथवा ६० भाग लसी में ४० भाग दूध के हिसाब से रहती है। लसी और दूध को भली भाँति मिलाकर उसमें ज़रा सा निमक—सोडियम क्लोराइड, अर्थात् मामूली खानेवाला निमक, अथवा सोडियम बाई-

कार्बोनेट या पोटैशियम बाईकार्बोनेट—घोल दिया जाता है, इससे उसकी सुपाचकता बढ़ जाती है।

अब इस कुल मिश्रित पदार्थ को बिल्कुल सुखा दिया जाता है। इसकी विधियाँ प्राय: सब उसी प्रकार की हैं जैसी जमे हुए दूध और दूध की सूखी बुकनी (Condensed milk and milk powder) बनाने के काम में आती हैं। मुख्य ध्यान केवल इस बात का रक्खा जाता है कि जहाँ तक होसके यह काम बहुत धीमी आँच से किया जाय। तेज़ आँच होजाने से उसके पौष्टिक तत्वों को हानि पहुँच जाती है। अतएव आँच का तापमान १३० °F अथवा १४० °F से ऊँचा कदापि न होना चाहिए।

सूखने पर यह मिश्रण छेददार, कुरकुरे, हलके और बड़े-बड़े ढोकों के रूप में हो जाता है, जिससे इसका रूप बहुत कुछ मधुमक्खियों के छत्तों की शकल का जान पड़ता है। बस, इन्हीं ढोकों को बारीक पीस कर पैक कर दिया जाता है, और फिर उन्हें बाहर बेचने के लिए भेज दिया जाता है। किन्तु इसको पीसने और भरने में गीली हवा से सदा बचना पड़ता है, कारण कि हवा की तरी से इसमें तत्काल सील पहुँच जाती है और यह गीला होकर चिपकने लगता है। यही कारण है कि बड़े-बड़े कारख़ानों में यह काम कृत्रिम रूप से ठंडे किये हुए कमरों (Refrigerated rooms) में किया जाता है जहां हवा में तरी का नाम नहीं रहता।

इस प्रकार यह गेहूँ और जौ के माल्ट से तैयार किया हुआ दूध **"माल्टेड मिल्क"** के नाम से पुकारा जाता है और हर शहर में सौदागरों की दूकान पर बिका करता है।

आइसक्रीम

आइस क्रीम का प्रचार इस देश में अब दिन पर दिन बढ़ता

जा रहा है। गरमी के दिनों में छोटे-बड़े सभी इसे खाने के शौक़ीन दिखाई देते हैं। इसके कारण गर्मियों में बहुत से ग़रीबों को अपनी जीवका का साधन मिल जाता है। इसके तैयार करने की रीति भी बड़ी सरल है। कोई भी मनुष्य अपने घर में एक मशीन लेकर इसे तैयार कर सकता है। आइस क्रीम बनाने की मशीनें बाज़ार में छोटी और बड़ी सब प्रकार की मिलती हैं।

यह मशीन एक लकड़ी की बाल्टी के अंदर लगी रहती है। बाल्टी के भीतर एक लोहे का लम्बा डब्बा रहता और डब्बे के अंदर एक पंखा रहता है। बाहर से हत्थे को पकड़ कर घुमाने से डब्बा बाल्टी के अंदर एक कील पर नाचता है। आइस क्रीम जमाने के लिए ताज़ा चिकना दूध लेकर और उसमें उचित मात्रा में चीनी मिलाकर डब्बे में भर दिया जाता है। यदि मन चाहे तो उसमें इलायची, कतरा हुआ पिस्ता, तथा ज़रा सा केसर भी डाला जा सकता है। इसके बाद ढक्कन को बंद कर के हत्था लगा दिया जाता है। बाल्टी के अंदर और डब्बे के बाहर चारों ओर से ऊपर तक बर्फ़ के टुकड़े निमक मिलाकर भर दिये जाते हैं, और तब हत्थे को हाथ से पकड़ कर घुमाया जाता है। इससे डब्बा नाचता है और अंदर का दूध कुछ ही मिनटों में ठंढक पाकर जमने लगता है। जब वह इतना गाढ़ा पड़ जाता है कि उसमें दाने पैदा हो जॉंय, तब उसे एक बड़े चम्मच से निकाल कर और प्याले में रखकर खाते हैं। शौक़ीन लोग इस पर चाँदी के वर्क़ भी चिपका लिया करते हैं।

ठीक-ठीक ढंग से आइस क्रीम तैयार करने के लिए निम्न लिखित बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है:—

१. आइस क्रीम जमाने के पहले हर बार डब्बे और पंखे को खौलते हुए पानी से अच्छी तरह साफ़ कर लेना चाहिए।

२. दूध के जमने के लिए बर्फ़ और निमक दोनों ही का होना आवश्यक है। निमक की मात्रा बर्फ़ से एक तिहाई होनी चाहिए। दोनों को बाल्टी के ऊपरी सिरे तक भरना चाहिए।

३. दूध भरने में डब्बे को ऊपर से तीन-चार अंगुल ख़ाली रखना चाहिए, क्योंकि जमने से दूध फूलता है।

४. हत्थे को बराबर एक चाल से घुमाना चाहिए।

दूध के साथ दो-चार नींबू, नारंगी अथवा किसी अन्य प्रकार के अच्छे फलों का रस मिला लेने से अलग-अलग स्वाद के आइस क्रीम तैयार किये जा सकते हैं। आइस क्रीम पचने में कुछ गरिष्ठ होता है, किन्तु जिन्हें पाचन की कोई शिकायत नहीं है उनके लिए यह एक बड़ी अच्छी और स्वादिष्ठ वस्तु है।

केसिन तथा दूध का चीनी की व्यवसाय

दही, मठा, मक्खन, घी, खोवा, रबड़ी, मलाई, इत्यादि के अतिरिक्त दूध से कुछ अन्य प्रकार के भी व्यवसाय चलते हैं। उदाहरणार्थ योरोप और अमेरिका में दूध की चीनी तथा केसिन निकालने के अनेकों कारख़ाने हैं। केसिन की खपत पेपर-मिलों में बहुत होती है। इसके द्वारा काग़ज पर क़लई चढ़ाई जाती है, जिससे उस पर चमक और चिकनाहट पैदा हो जाती है। दूध की चीनी अधिकतर होमियोपैथिक दवा में काम आती है, तथा शीघ्र पचने के कारण रोगियों और बच्चों को भी खिलाई जाती है। इनको दूध से निकालने की रीति इस प्रकार है:—

केसिन निकालने की रीति

इसके लिए प्रायः मक्खन या मलाई उतारा हुआ दूध काम में आता है, क्योंकि वही सस्ता पड़ता है। केसिन निकालने का

उपाय बिल्कुल सरल है। एक बड़े बरतन में दूध को भर कर फाड़ लिया जाता है। फाड़ने के लिए दूध में ज़रा सा एसेटिक एसिड तथा गंधक का तेज़ाब मिला कर छोड़ दिया जाता है। तेज़ाब की मात्रा सौ भाग दूध में प्रायः ½ या १ भाग से अधिक नहीं होती। जिस समय दूध बिल्कुल फट जाता है और पानी छोड़ देता है, तो पानी को निकाल कर अलग कर लेते हैं और छेने को कई बार साफ़ पानी में धोते हैं। यह धोना उस समय तक जारी रक्खा जाता है जब तक धोवन का पानी बिल्कुल साफ़ न निकलने लगे। तत्पश्चात् छेने को स्क्रू प्रेस में ख़ूब ज़ोर से दबाया जाता है, जिससे उसका अधिकतर जल निचुड़ जाता है। तब उसे कूट-पीस कर बारीक करते हैं और आँच पर सुखा कर चूर्ण बना लेते हैं। बस, यही चूर्ण डब्बों में भर भर कर बिका करता है।

दूध को फाड़ने के लिए तेज़ाब के स्थान में रेनेट भी काम में लाया जा सकता है। किन्तु इससे जो केसिन तैयार होता है वह घटिया दरजे का होता है और रंग में पीला होता है। तेज़ाब के द्वारा केसिन सफ़ेद और ऊँचे दर्जे का निकलता है।

दूध की चीनी

दूध को फाड़ कर केसिन निकाल लेने के बाद जो पानी अथवा तोड़ बचता है उसी से दूध की चीनी बनाई जाती है। दूध में जो कुछ चीनी का अंश मौजूद रहता है वह सब इसी पानी में घुला रहता है। इस पानी के अन्दर पदार्थों का मिश्रण इस प्रकार पाया जाता है:—

दूध की चीनी	४·६ से ५·० फ़ी सदी	
प्रोटीन (मुख्यतः एल्ब्युमिन)...	१·०	,,
चर्बी	०·२	,,
क्षार	०·६	,,

तोड़ को गरम करने से एल्ब्युमेन जम जाता है और अलग हो जाता है। अब सारा पानी जला देने के बाद जो सूखी वस्तु नीचे बच रहती है वह वास्तव में दूध की चीनी ही है, यद्यपि उसमें अन्य वस्तुओं का भी थोड़ा-बहुत मेल रहता है। परीक्षा करने पर इसमें प्रायः ९० फ़ी सदी चीनी, ८ फ़ी सदी क्षारभाग, तथा १ फ़ी सदी में प्रोटीन चर्बी आदि पायी जाती है। जब तोड़ का पानी बहुत अधिक मात्रा में होता है तो उसे वायुशून्य पात्रों में गरमाया जाता है।

चीनी निकालने के लिए तोड़ का पानी (दूध फाड़ने के बाद ही) तत्काल काम में लाना चाहिए, अन्यथा उसका बहुत सा चीनी का भाग लैक्टिक एसिड के रूप में बदल जायगा, जिससे नुक़सान होगा। इसी नुक़सान से बचने के लिए बहुधा लोग ज़रा सा सोडियम कारबोनेट घोल कर दूध में मिला दिया करते हैं। इससे दूध में खटास नहीं पैदा होने पाती। यही काम फ़ारमैलिन के छोड़ने से भी हो सकता है, किन्तु यह ज़रा क़ीमती चीज़ है। खट्टे दूध के तोड़ को काम में लाने के लिए उसे पहले ऊपर की रीति से शोध लेना सदैव अत्यावश्यक है।

वायुशून्य पात्र में गरम करने के लिए प्रायः ६०°C से ७०°C तक की गरमी आवश्यक होती है। इसमें ज्यों-ज्यों भाप बन कर एक ओर से पानी उड़ता जाता है। त्यों-त्यों दूसरी ओर से उतना ही तोड़ का पानी बराबर भरता जाता है। इससे पानी का सतह बराबर एक सा बना रहता है। जिस समय तोड़ में से पानी का भाग इतना जल

चुकता है कि उसमें ठोस पदार्थों का भाग ६० फ़ी सदी होजाय, तब उसे एक ख़ास टंकी (Crystallising tank) में गिरा दिया जाता है और फिर ठंडा कर लिया जाता है। गरमी के दिनों में इसे जल्दी ठंडा करने के लिए ठंडे पानी का भी व्यवहार किया जाता है। मतलब यह है कि २४ घंटे के अंदर उसका तापमान ६०°C से उतर कर २० °C पर अवश्य आजाना चाहिए।

इस समय यह लेई जैसा गाढ़ा होजाता है और इसमें चीनी के रवे भी बनने लगते हैं। अब इसी को सेन्ट्रीफूगल मशीन (centrifugal machine) में डाल कर अच्छी तरह सुखा लिया जाता है, जिससे चीनी बन जाती है। क़रीब एक तिहाई भाग इसका पानी के साथ निचुड़ कर अलग बह जाता है। उसमें भी बहुत सी चीनी चली जाती है। अतएव उसे दोबारा गरम करके फिर से चीनी निकालते हैं।

चीनी का शोधना

यह चीनी जो तैयार होती है, रंग में पीली रहती है और इसमें कई वस्तुओं का मेल रहता है। कभी-कभी यह इसी अवस्था में बिक जाती है, किन्तु बहुधा इसे शुद्ध कर लिया करते हैं, जिससे सफ़ेद रंग की ख़ालिस चीनी तैयार हो जाती है। इसको शुद्ध करने के लिए पहले बड़ा खटराग उठाना पड़ता था और इसीलिए यह चीनी मँहगी भी बहुत पड़ती थी। किन्तु अब अपेक्षाकृत यह काम कुछ सरल होगया है और इसलिए ख़र्च भी घट गया है, जिससे यह चीनी अब उतनी महँगी नहीं बिकती। यह चीनी स्वच्छ श्वेत रंग के चूर्ण के रूप में तैयार होती है और बिकती है। दवा के लिए इसी की बनी हुई छोटी-बड़ी गोलियाँ भी बिका करती हैं।

दसवां अध्याय

दुग्ध-चिकित्सा

दूध में रोगनाशक शक्ति का होना भारतीय विद्वानों ने बहुत प्राचीन काल से स्वीकार किया है। वैद्यक ग्रंथों में भिन्न-भिन्न पशुओं का दूध भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों में लाभदायक कहा गया है। उदाहरणार्थ गाय का दूध वायु, पित्त, और रक्त-विकार का नाशक है। बकरी का दूध क्षय, खाँसी, रक्तपित्त एवं अतिसार रोगों में फ़ायदा करता है। भेड़ का दूध पथरी रोग को अच्छा करता है। और ऊँटनी का दूध कोढ़, बवासीर, तथा पेट के कीड़ों का नाशक है। कुछ देशी वैद्यगण अब भी पेट के कई रोगों में दूध या मट्ठे का कल्प कराया करते हैं, जिसमें रोगी को केवल दूध अथवा मट्ठा दिया जाता है और सब प्रकार का भोजन एकबारगी बंद करा दिया जाता है। यहाँ तक कि उसे पीने को पानी तक नहीं मिलता। इस प्रकार से कितने ही रोगी अच्छे किये जा चुके हैं। विशेषकर अग्निमांद्य तथा संग्रहणी का रोग इस रीति से बहुधा अच्छा होता देखा गया है।

हिकमत की पुस्तकों में भी दूध के रोगनाशक शक्ति की चर्चा मिलती है। यथा गाय के दूध की बाबत 'ख़वासुल अदविया' में लिखा है :—"गाय का दूध किसी क़दर मीठा और सफ़ेद मशहूर है। सिल (,कलेजे की सूजन और उसमें मवाद पड़ जाना), तपेदिक़ और फेफड़े के ज़ख्म के लिए मुफ़ीद है। ग़म को दूर करता है और

ख़फक़ान (पागलपन) को फ़ायदेमंद है। चमड़े पर रंगत लाता है और बदन को मोटा करता है। दिल और दिमाग़ को मज़बूत बनाता है, मनी (वीर्य) पैदा करता है, और जल्द हज़म होजाता है।" बकरी के दूध के बाबत कहा गया है कि "यह ख़ासकर गर्म मिज़ाज वालों को फ़ायदेमंद है। इसके ग़रग़रे (कुल्ले) करने से हलक़ की बीमारी को फ़ायदा पहुँचता है। हलक़ के ख़राश, मसाने के ज़ख़्म, सिल, फेफड़ों के ज़ख़्म, मुँह से ख़ून आना और खाँसी में भी मुफ़ीद है।"

इधर कुछ समय से पाश्चात्य देशवासियों को भी दूध की रोग-नाशक शक्ति का पता लगने लगा है। अतएव वहाँ भी दुग्ध-चिकित्सा की प्रणाली चल पड़ी है। अमेरिका और योरोप में इस समय अनेकों ऐसे हस्पताल हैं जहाँ केवल दूध पिला कर सब प्रकार के रोग अच्छे किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में एला व्हीलर विल्काक्स (Ella Wheeler Wilcox) नाम की एक अंग्रेज़ महिला ने लिखा है कि "केवल हृदय के कुछ स्थानीय रोगों को छोड़ कर शेष कोई भी ऐसी बीमारी नहीं है जो हठपूर्वक दूध सेवन से न अच्छी हो सके। यहाँ तक कि क्षय और कैन्सर (Cancer) तक दुग्ध-चिकित्सा के द्वारा निर्मूल किये जा सकते हैं।"

अस्तु; जो हो, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि आहार सम्बन्धी ज्यों-ज्यों हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध होती जाती है कि शरीर की अनेकों व्याधियाँ ऐसी हैं जो केवल भोजन की ही त्रुटियों से उत्पन्न हुआ करती हैं। अतएव यदि भोजन में सुधार कर दिया जाय तो ये बीमारियाँ स्वभावतः जाती रहती हैं। उदाहरणार्थ रिकेट्स (Rickets अर्थात् अस्थि-कोमलता का रोग), स्कर्वी (जिसमें देह पर नीले चित्ते पड़ जाते हैं), श्वास के साथ दुर्गंध

आती है, कमज़ोरी बहुत बढ़ जाती है और कभी कभी श्लैष्मिक झिल्लियों से ख़ून भी जाने लगता है,), पेलग्रा (Pellagra), वेरी-वेरी (Beri-beri), ज़ेराफ़थैल्मिया (Xerophthalmia = एक प्रकार का नेत्र रोग) आदि रोगों के विषय में अब निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि ये बीमारियाँ केवल कुछ विशेष जाति के वाइटेमिन के अभाव से ही उत्पन्न हो जाती हैं और यदि इन वाइटेमिनों को भोजन में सम्मिलित कर दिया जाय तो शीघ्र ही अच्छी हो जाती हैं। अस्तु, बहुत संभव है कि इस प्रकार के और भी कितने ही रोग हों जिनका भोजन की त्रुटियों से सम्बन्ध हो और जिनका पता अभी तक हमें न लग सका हो। अतएव भोजन के सुधार से यदि अनेकों प्रकार के रोग अच्छे हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

अब भोजन-सुधार के प्रश्न पर यदि हम विचारपूर्वक ध्यान दें तो जान पड़ेगा कि कम से कम रोगियों के लिए तो सब प्रकार का भोजन त्याग कर केवल दूध पर ही रहना आवश्यक और लाभकारी है, कारण कि रोगी की पाचन-शक्ति सदैव निर्बल और विकृत हुआ करती है। अतएव उसे किसी ऐसे भोजन की आवश्यकता रहती है जिससे शरीर का पोषण तो भली भाँति हो सके किन्तु जिसे पचाने में शक्ति अधिक न खर्च हो। कहना न होगा कि इस प्रकार का भोजन दूध से बढ़ कर और कोई नहीं है। वैसे भी स्तन पीने वाले तमाम जीवधारियों के लिए दूध ही एक प्रकृति-निर्मित सर्वाङ्गपूर्ण भोजन है। इसे प्रकृति ने तैयार किया है और दूध पीनेवाले जीवों की शारीरिक आवश्यकताओं को समझ कर तैयार किया है। अतएव इसमें हमारी आवश्यकता के अनुसार सभी प्रकार के तत्वों की उचित मात्रा मिला करती है। किसी तत्व की न्यूनता का भय इसमें नहीं है। अस्तु, उपरोक्त श्रेणी की तमाम बीमारियों के लिए, जिसे अंग्रेज़ी में 'न्यूनता की बीमारी'

(Deficiency diseases) कहते हैं, दूध का सेवन ही सब से बढ़कर इलाज कहा जा सकता है। इसके द्वारा थोड़े में ही भोजन की सम्पूर्ण कमी पूरी हो जाती है और शरीर को विश्राम भी मिलता है। दूध को पचाने में शरीर की बहुत कम शक्ति ख़र्च होती है, अतएव उसकी जो शक्ति बच रहती है वह रोगों को बाहर निकालने में काम आती है। ऊपर के तर्क से सिद्ध है कि पाचन-विकार से सम्बन्ध रखने वाली तमाम बीमारियों तथा 'न्यूनता-सम्बंधी समस्त रोग' (deficiency diseases) एकांत दूध-सेवन से अवश्य अच्छे किये जा सकते हैं। अन्य प्रकार की बीमारियों के सम्बंध में भी यदि भाँति-भाँति की औषधियों और वनस्पतियों का काढ़ा रोगी को पिलाने के बजाय वे ही दवाएँ पशुओं को खिलाई जाँय तो उनका दूध उन काढ़ों की अपेक्षा अधिक गुणकारी सिद्ध हो सकता है, कारण कि औषधियों का सारभाग खिंच कर दूध में मिल जाने से शरीर के अंदर वह अधिक उत्तमता के साथ ग्रहण किया जा सकता है। किंतु यह केवल एक विचारमात्र है। जब तक इसकी सत्यता प्रयोगों की कसौटी पर न कस ली जाय तब तक इस विषय में कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

अब हम दूध के इलाज में जिन-जिन बातों को जान रखना आवश्यक है उन्हें बतलाने का प्रयत्न करते हैं। इलाज के लिए सब से अच्छा दूध बकरी का समझा जाता है। बकरी दिन भर जंगल में चलती-फिरती रहती है और भाँति-भाँति की पत्तियाँ खाया करती है। अतएव उसके दूध में औषधि का सा गुण आ जाता है। गाय का दूध बकरी के दूध से निम्नतर श्रेणी का है और उससे भी उतर कर भैंस का दूध समझा जाता है। गाय के दूध में थाईरायड ग्लांड (thyroid gland) का अंश भी मिलता है। अतएव उसके द्वारा

देह में स्फूर्ति पैदा होती है। भैंस के दूध से शिथिलता और आलस्य का संचार होता है। पशुओं के रंग का भी दूध पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव वास्तव में रंग-चिकित्सा (Chromopathy) के सिद्धांतों के अनुसार ही होता है। उदाहरणार्थ पीले और काले रंग के पशुओं का दूध यकृतरोगों के लिए लाभकारी है। सफ़ेद रंग के जानवरों के दूध में फ़ास्फ़ोरस और पोटाशियम की मात्रा अधिक मिलती है, अतएव वह कफ की वृद्धि करता है। तथा लाल जानवरों का दूध रक्त के लाल परमाणुओं को बढ़ाता है।

इसी प्रकार पशुओं के स्वास्थ्य और परिश्रम का भी उनके दूध में यथेष्ट प्रभाव पड़ता है। जो जानवर खुली हवा और धूप में चलते फिरते रहते हैं उनका दूध हल्का और स्वास्थ्यकारी होता है, तथा उनके दूध में वाइटेमिन की मात्रा पूरी तौर पर पायी जाती है। किंतु जो जानवर सदैव- घर के अंदर बँधे रहते हैं उनका दूध भारी और दोषपूर्ण होता है। साथ ही उसमें वाइटेमिन भी अधिक नहीं पाये जाते। रोगी जानवरों का दूध तो कदापि भूलकर भी न पीना चाहिये।

सबसे अधिक प्रभाव दूध पर पशुओं के भोजन का पड़ता है। अतएव यदि किसी पशु के दूध में किसी प्रकार का दोष जान पड़े तो वह बहुत कुछ उसके भोजन की सहायता से भी ठीक किया जा सकता है। उदाहरणार्थ यदि किसी जानवर का दूध वायुकारक जान पड़ता है तो उसमें क्षारीय तत्वों की न्यूनता समझनी चाहिए। अतएव ऐसे जानवर को घास अथवा शाकपात अधिक खिलाना चाहिए। इससे उसके दूध में क्षारीय तत्वों की कमी पूरी हो जायगी और दूध का बादीपन मिट जायगा। इसी प्रकार जिस पशु का दूध

क़ब्ज़ करता हो उसे प्याज़, नीम, इत्यादि ऐसी वस्तुएँ खिलानी चाहिए जो रेचक हो तथा जिनमें गंधक की मात्रा अधिक हो।

दूध गरम करके पीना चाहिये अथवा कच्चा इस विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि यह दूध की स्वच्छता और निर्मलता पर निर्भर है। यदि दूधवाला पशु स्वयं रोगी की अथवा चिकित्सक की देखरेख में रहता है और दूध की सफ़ाई और शुद्धता का पूरा-पूरा प्रबंध है, तो कच्चे दूध से बढ़कर और कोई दूध नहीं कहा जा सकता। कच्चे दूध में सब प्रकार के स्वास्थ्यकारी तत्व और वाइटेमिन अपनी स्वाभाविक अवस्था में मौजूद रहते हैं, तथा यह अत्यंत हलका और पचनशील भी होता है। अतएव इसके गुणों को गरम किया हुआ दूध कदापि नहीं पा सकता। दूध को गरम करने से उसमें कई प्रकार के रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं, जिससे उसकी सुपाच्यता कम हो जाती है। साथ ही उसके कई एक वाटेमिन भी जल जाते हैं। विशेषकर वाइटेमिन सी तो बिल्कुल ही नष्ट हो जाता है। अतएव यदि सफ़ाई का समुचित प्रबंध हो सके तो यथासंभव दूध को कच्चा ही पीना चाहिए। किन्तु यदि बाहर से दूध मँगाना पड़े, अथवा बहुत देर का रक्खा हुआ दूध हो, जिसकी स्वच्छता पर बहुत अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता, तो उसे कच्चा पीने के बजाय गरम करके ही पीना श्रेय है, कारण कि ऐसे दूध में रोगाणुओं की सम्भावना रहती है। अतएव अपने को रोगों की जोखिम में डालना कदापि उचित नहीं। किन्तु गरम करने के लिए दूध को धीमी-धीमी आँच पर देर तक पकाने के बजाय उसे तेज़ आँच में जल्दी से उबाल लेना अधिक अच्छा है। इससे वाइटेमिन अधिक नहीं नष्ट होते। जहाँ तक हो दूध में मलाई भी न पड़ने देना चाहिए। दूध के अन्य वाइटेमिन की अपेक्षा 'सी' नाम का वाइटेमिन थोड़ी आँच

में भी नष्ट हो जाता है। अतएव यदि दूध को गरम करके पीना पड़े तो वाइटेमिन 'सी' की पूर्ति दो-एक टमाटर, संतरा अथवा नींबू खाकर अवश्य कर लेनी चाहिए। टमाटर में ए, बी, सी और डी चारो प्रकार के वाइटेमिन पाये जाते हैं। नारंगी में भी बी और सी दो प्रकार के वाइटेमिन मिलते हैं।

चिकित्सा के नियम

(१) दूध की चिकित्सा आरंभ करने के पहले उचित होगा कि दो एक दिन का निराहार उपवास अवश्य कर लिया जाय। उपवास करने से पेट और आँतों की शुद्धि हो जाती है तथा उनकी पाचन-शक्ति भी बढ़ जाती है। अतएव अपने बलाबल का विचार करके कम से कम एक दिन, और अधिक से अधिक तीन दिन का निराहार उपवास किया जाय। उपवास के दिनों में पानी जितना अधिक हो सके बराबर पिया जाय। कम से कम पाँच या छः सेर पानी तो रोज़ अवश्य ही पीना चाहिए। इससे अन्दर का हिस्सा धुल जाता है और पाकाशय, गुर्दे, तथा रुधिर की भली भाँति सफ़ाई हो जाती है। उपवास के दिनों में यदि जी मिचलाये अथवा कै शुरू हो जाय तो पानी में थोड़ा सोडा घोल कर पीना चाहिए।

(२) उपवास के अनंतर शरीर को केवल दूध के आहार पर रखना चाहिए। चिकित्सा-काल में किसी दूसरे प्रकार का भोजन बिल्कुल मना है। यहाँ तक कि पानी भी पीने की आवश्यकता नहीं। चीनी भी दूध में हर्गिज़ न डालनी चाहिए।

(३) दूध पीने की ठीक रीति यह है:—एक बार में आध सेर दूध लेकर पहले उसे अच्छी तरह हिला ले। बाद में चम्मच से थोड़ा-थोड़ा दूध मुँह में लेकर कुछ देर तक टुघलाता रहे, जिससे मुँह की लार

दूध में अच्छी तरह मिल जाय। तब उसे गले के नीचे उतर जाने दे। इस प्रकार स्वाद ले-लेकर दूध को धीरे-धीरे पीने से उसके पचने में बड़ी सहायता मिलती है। आध सेर तक दूध इस तरह पीने में कम से कम ४ या ५ मिनट का समय अवश्य लगना चाहिए।

(४) एक बार में आध सेर से अधिक दूध न पीना चाहिए। आधे घंटे के बाद यदि रुचि हो तो आध सेर दूध फिर पी लिया जाय। इस प्रकार आध-आध घंटे का अंतर देकर दिन भर में यथेच्छ दूध पिया जा सकता है। हर एक मनुष्य को दिन भर में कितना दूध पीना चाहिए इसका कोई एक निश्चित नियम नहीं बताया जा सकता। यह हर एक मनुष्य के अलग-अलग स्वास्थ्य और पाचन-शक्ति पर निर्भर है। अमेरिका में इस प्रकार रोगियों को प्रति दिन ३०-३२ सेर तक दूध पिलाते देखा गया है। यहाँ भारतवर्ष में भी एक रोगी को दिन भर में २८ सेर तक दूध पिलाया गया है। किन्तु साधारण तौर पर यहाँ के मनुष्यों के लिए ७ या ८ सेर दूध काफ़ी होता है। जो लोग इससे अधिक पचा सकते हैं उन्हें आश्चर्यजनक लाभ भी दिखाई देता है।

(५) चिकित्सा के पहले दिन तीन सेर से अधिक दूध न लेना चाहिए। यदि इतना दूध भी अधिक जान पड़े तो २॥ सेर अथवा दो ही सेर से आरंभ किया जा सकता है। सबेरे सात बजे से लेकर आध-आध घंटे के अंतर पर नौ बजे तक दो सेर दूध पीना चाहिए। शेष एक सेर दूध में से आध सेर दोपहर को और आध सेर संध्या को ले सकते हैं। दूसरे दिन एक सेर दूध और बढ़ा कर चार सेर कर देना चाहिए, और फिर इसी प्रकार सेर भर प्रति दिन के हिसाब से बढ़ाते हुए सात या आठ सेर तक किया जा सकता है, अथवा यदि संभव हो तो अधिक भी बढ़ाया जा सकता है। अधिक दूध पीने के

लिए सवेरे सात बजे से दस बजे तक तीन सेर दूध लिया जा सकता है। तत्पश्चात् तीन घंटे ठहर कर बारह बजे से तीन बजे तक उसी प्रकार तीन सेर और लिया जा सकता है। शेष संध्या को पाँच बजे से आठ बजे तक में पी सकते हैं। दूध पीने की रीति जैसी ऊपर कही गयी है वही रहेगी, अर्थात् आध-आध घंटे का अंतर देकर प्रत्येक बार आध सेर के हिसाब से पीना होगा। यदि दस सेर से अधिक दूध पिया जा सके तो फिर ठहरने की आवश्यकता नहीं। दिन भर आध-आध घंटे पर आध सेर दूध पिया जा सकता है। किन्तु यह प्रोगाम ऐसा अनिवार्य नहीं है। आवश्यकता और सुविधा के अनुसार इसमें फेरफार भी किया जा सकता है।

(६) कुछ लोगों को दूध पीते समय उससे अरुचि उत्पन्न हो जाती है अथवा पेट में गुड़गुड़ाहट या वायु जान पड़ती है। इसका कारण यह है कि पेट में दूध को पचाने योग्य अम्लरस (acid) कम बनता है। अतएव यदि दूध पीने के पहले एक-आध खट्टा नींबू खा लिया जाय तो यह शिकायत जाती रहेगी। अथवा थोड़ा सा छाछ बीच-बीच में पी लिया जाय तो भी यह शिकायत मिट सकती है। यदि इन उपायों को करने पर भी तकलीफ़ दूर न हो तो एक दो दिन का उपवास कर डालना चाहिये। इससे पाकाशय में नयी स्फूर्ति आ जायगी और अम्लरस अधिक वेग से बनने लगेगा।

(७) कुछ लोगों को दुग्ध-चिकित्सा के आरंभ में कब्ज़ियत रहने लगती है और कुछ लोगों को दस्त आने लगते हैं। इन दोनों ही अवस्थाओं में एनिमा लेना सबसे उत्तम उपाय है। एनिमा के लिए केवल शुद्ध सादा पानी ही लेना चाहिये। उसमें साबुन इत्यादि कोई चीज़ मिलाना उचित नहीं, किन्तु यदि आवश्यकता जान पड़े तो थोड़ा सा निमक मिला सकते हैं।

(८) कभी कभी दूध पीते-पीते पेट फूलने लगता है और अफरा सा जान पड़ता है। इससे घबराने की आवश्यकता नहीं। इसका कारण यह है कि दूध का जलभाग पेट में अधिक इकट्ठा हो जाता है। इसलिए यदि कुछ देर के लिए दूध पीना बंद कर दिया जाय तो दूध का संचित जल-भाग पेट की दीवारों में आप से आप सोख कर ख़ून में मिल जायगा और पेट का फूलना बंद हो जायगा। ख़ून में जो पानी जाकर मिलता है वह भी ख़ून की शुद्धि करता है और गुर्दे एवं मूत्राशय को धोता हुआ मूत्रमार्ग से बाहर निकल जाता है।

(९) चिकित्साकाल में जहाँ तक बन पड़े अधिक परिश्रम के कार्य न करने चाहिए। यदि शरीर को पूरा-पूरा विश्राम दिया जा सके तो बहुत ही अच्छा है, किन्तु यह न होसके तो कम से कम आरंभ में चार-छः दिन तक तो अवश्य विश्राम करे। बाद में फिर अपना नित्य का काम-काज करता भी रहे तो विशेष हर्ज नहीं है।

(१०) दूध की सफ़ाई और शुद्धता पर सबसे ज़्यादा ध्यान रखना चाहिए। जहाँ तक बन पड़े तत्काल का ही दुहा दूध पीना चाहिए। किन्तु दिन भर तत्काल का दुहा दूध मिलना कठिन है। कम से कम दोपहर तक तो साधारणत: सवेरे का ही रखा दूध पीना पड़ेगा। शाम को फिर ताज़ा दूध मिल सकता है। अतएव रखने के लिए दूध को बर्फ़ में दबा देना चाहिये। यदि बर्फ़ न मिल सके तो भीगा हुआ कपड़ा ही दूध के बरतन पर अच्छी तरह लपेट कर किसी ठंडी और साफ़ जगह पर रखा जा सकता है।

(११) बर्फ़ के नीचे दबा हुआ दूध पीते समय थोड़ा गुनगुना कर लेना चाहिये। बहुत ठंडा दूध पीना उचित नहीं।

(१२) जिन लोगों को खट्टे-मीठे एवं भाँति-भाँति के स्वादिष्ट

भोजन करने की आदत है अथवा जो पान, बीड़ी, सिगरेट, चाय, कोको, क़हवा इत्यादि के आदी हैं उन्हें दुग्ध-चिकित्सा के प्रारंभिक कुछ दिन बड़े कठिन जान पड़ेंगे। चित्त में बेचैनी सी मालूम होगी। शारीरिक व्यापारों में असाधारणता दीखेगी। संभव है कुछ पीड़ाएँ भी उत्पन्न हो जायँ। किन्तु इनसे घबरा कर बीच में ही चिकित्सा को छोड़ बैठना उचित नहीं। हठपूर्वक मन को पोढ़ा करके इलाज जारी रखना चाहिए और विश्वास रखना चाहिये कि उसका अंत सदैव अच्छा ही होगा।

(१३) मन का प्रभाव स्वास्थ्य पर अत्यधिक पड़ता है। अतएव चिकित्साकाल में मन को सब प्रकार से सुखी और संतुष्ट रखना बहुत आवश्यक है। जहाँ तक संभव हो हँसमुख मित्रों और छोटे बच्चों में ही रह कर अपना समय बिताना चाहिये। चिकित्सा के सम्बंध में भी किसी प्रकार का अविश्वास रखना अपने हित में अच्छा न होगा। स्मरण रहे कि दूध की उपयोगिता आज से नहीं मुद्दत से अनेकों देशों में और अनेकों रोगियों पर परीक्षित हो चुकी है। अतएव इसके विषय में किसी प्रकार की शंका अथवा दुविधा रखना केवल अपनी ही हानि करना है। इससे आरोग्य की प्राप्ति में देरी लगेगी। जो लोग कुछ अस्थिर अथवा निर्बल चित्त के हों उनके लिये उचित है कि पहिले ही से ख़ूब सोच-विचार कर और चित्त को पक्का-पोढ़ा करके यह चिकित्सा आरंभ करें।

(१४) चिकित्सा आरंभ करने के पहले ऊपर के तमाम नियमों को एक-दो बार ध्यानपूर्वक पढ़कर समझ लेना अति आवश्यक है, कारण कि इनके ठीक-ठीक पालन से ही चिकित्सा का पूरा-पूरा लाभ मिल सकता है।

इस प्रकार यदि पूरे धैर्य्य और विश्वास के साथ दो-तीन महीने तक दूध का एकांत सेवन किया जाय तो यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि शरीर के अधिकांश रोग एकबारगी नष्ट हो सकते हैं। जिन लोगों को कोई विशेष रोग नहीं है, केवल बल और पौरुष बढ़ाने के लिए दूध का सेवन करना चाहते हैं, वे भी इस चिकित्सा से भारी लाभ उठा सकते हैं। इसके द्वारा शरीर का दुबलापन शीघ्र मिट जाता है, रुधिर की मात्रा बढ़ जाती है, हड्डियों पर मांस आ जाता है, और हरएक अंग गोलवार तथा सुंदर दिखाई देने लगता है। साथ ही चेहरे की चमक भी दूनी हो जाती है और बालों में भी कोमलता आ जाती है। ख़ून अधिक तेज़ी के साथ बनने के कारण शरीर का वज़न भी बहुत जल्दी बढ़ता है। यह वज़न अधिकांश लोगों में पावभर से लेकर सेर भर प्रति दिन के हिसाब से बढ़ता देखा गया है। किन्तु जो लोग बहुत अधिक दूध पचा सकते हैं वे तीन या चार सेर तक भी रोज़ बढ़े हैं। चिकित्सा के बाद यदि स्वास्थ्यकारी नियमों का बराबर पालन होता रहे तो शरीर का यह वज़न जीवन भर बना रह सकता है और आयु भी बहुत कुछ दीर्घ हो सकती है।

ग्यारहवां अध्याय

गो-दोहन

आजकल दूध दो प्रकार से दुहा जाता है:—(१) हाथ से। (२) मशीन के द्वारा। हमारे देश में अब तक प्राय: दूध हाथ से ही दुहा जाता है। किन्तु योरोप और अमेरिका में यह काम मशीन से लिया जाता है। नीचे हम दोनों रीतियों का हाल संक्षेप से अलग-अलग लिखते हैं:—

(१) हाथ से दुहना

हाथ से दूध दुहने का कार्य एक प्रकार की कला है। इसे सीखने की आवश्यकता पड़ती है। जो लोग इस फ़न में होशियार होते हैं उनका हाथ बड़ा हलका और तेज़ी के साथ चलता है। साथ ही उनके दुहने में दूध की अंतिम बूंद तक थन से निचुड़ आती है। किंतु नौसिखियों के द्वारा जानवर को कष्ट भी अधिक होता है और दूध भी कम निकलता है।

हाथ से दुहने की भी दो रीतियाँ हैं। पहिली विधि में थन को तर्जनी और अँगूठे से पकड़-पकड़ कर खींचना और छोड़ना पड़ता है। दूसरी विधि में थन को तीन या चार अँगुलियों से मुट्ठी में दबा-दबा कर छोड़ना होता है। भेड़, बकरी, गाय या गधी को दुहने में प्राय: पहिली विधि काम में लायी जाती है। किन्तु भैंस अथवा ऐसी गायें जिनके थन अधिक लम्बे और मोटे होते हैं उनके दुहने

में दूसरी विधि से काम लिया जाता है। कुछ लोग पहले आगेवाले दोनों थनों को दुह कर तब पीछे को दुहते हैं और कुछ पीछे ही वाले थनों को पहिले दुह लेते हैं। कहीं-कहीं एक थन आगे और फिर एक थन पीछे दुहने की भी चाल है। दूध सदैव पशु की बाईं ओर बैठ कर दुहा जाता है।

हमारे देश में प्रायः सब जगह बच्चे को कुछ दूध पहले पी लेने दिया जाता है तब दुहा जाता है। इससे दूध आसानी से उतर आता है। किन्तु इसमें एक कठिनाई पड़ती है। बिना बच्चा पास रहे गाय दूध ही नहीं देती। जब कभी उसका बच्चा मर जाता है तो वह दूध देना भी बंद कर देती है। ऐसी दशा में ग्वाले लोग बहुधा बछड़े की खाल में भूसा भर कर अथवा किसी लकड़ी के ढांचे पर उसे मढ़ा कर गाय के सामने खड़ा कर दिया करते हैं, जिससे गाय धोखे में आजाती है और उसी खाल को अपना बच्चा समझ कर दूध देने लगती है। किन्तु योरोप और अमेरिका में बच्चा पिलाने की चाल नहीं है। वहाँ गाय को सदा बच्चों से अलग रख कर दूध दुहा जाता है। अतएव वहाँ यह कठिनाई नहीं पड़ती।

दूध दुहने में दो-एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। जहाँ तक संभव हो दूध सदा निश्चित समय पर ही दुहना चाहिए। निश्चित समय के न रहने से गाय अच्छी तरह दूध नहीं देती। इसके अतिरिक्त दुहने का काम भी सदैव एक ही आदमी को करना चाहिए। बार-बार आदमी बदलने से भी दूध कम हो जाता है। दुहने के समय गाय को मारना, पीटना या किसी तरह का कष्ट देना बुरी बात है। इससे बहुधा गाय दूध को थन में रोक लेती है, जिससे दोहरी हानि होती है। एक तो दूध कम मिलता है और दूसरे गाय को दूध रोकने की आदत पड़ जाती है। अतएव हमेशा उसके साथ

प्यार और चुमकार से ही काम लेना चाहिए। भड़काने या डराने वाली कोई चीज़ भी उसके सामने न आने देनी चाहिए। यदि गाय का थन रूखा या कड़ा हो तो उसमें थोड़ी सी वेसलीन, घी, या तेल चुपड़ लेना चाहिये। इससे थन मुलायम होजाता है। ग्वाले लोग बहुधा इसके लिये थन में से थोड़ा सा दूध ही निचोड़ कर लगा लिया करते हैं। किन्तु जैसा कि पहले बीजाणुओं की चर्चा करते हुए बतला आये हैं, इस ढंग से हाथ में और थनों पर हवा के बहुत से बीजाणु आ चिपकते हैं और दूध की धार के साथ मिल जाते हैं। इसलिए ऐसा करना कदापि उचित नहीं। जब आवश्यकता पड़े तो केवल घी या वेसलीन ही लगानी चाहिए।

सुनते हैं इस देश में पहले किसी समय दूध दुहने की कला में बड़े-बड़े उस्ताद लोग मौजूद थे, जो अपने कंधों पर और कुहनी के आगे बाँहों पर तेल की भरी कटोरियाँ रख कर दूध दुहते थे, और फिर भी कटोरियों का एक बूँद तेल न गिरने पाता था। किन्तु अब इस कल और मशीन के युग में हाथ की कलाओं का नाम प्रायः मिटता सा जा रहा है।

(२) मशीन के द्वारा गो-दोहन

इंग्लैंड और अमेरिका में गायें दुहने के लिए प्रायः कलों से काम लिया जाता है। इन कलों के द्वारा एक साथ कई गायों का दूध दुहा जा सकता है। साथ ही इनसे दूध के अंदर मैल, मिट्टी, गर्द अथवा वायु के बीजाणु भी नहीं पहुँच पाते।

दूध दुहने की सबसे पहली मशीन उन्नीसवीं शताब्दी में मेयर नाम के एक अमेरिका-निवासी ने बनाई थी। उसके पश्चात् स्वीडेन, डेनमार्क, जर्मनी आदि कई देशों में इसी प्रकार की कलें तैयार हुईं।

में दूसरी विधि से काम लिया जाता है। कुछ लोग पहले आगेवाले दोनों थनों को दुह कर तब पीछे को दुहते हैं और कुछ पीछे ही वाले थनों को पहिले दुह लेते हैं। कहीं-कहीं एक थन आगे और फिर एक थन पीछे दुहने की भी चाल है। दूध सदैव पशु की बाईं ओर बैठ कर दुहा जाता है।

हमारे देश में प्राय: सब जगह बच्चे को कुछ दूध पहले पी लेने दिया जाता है तब दुहा जाता है। इससे दूध आसानी से उतर आता है। किन्तु इसमें एक कठिनाई पड़ती है। बिना बच्चा पास रहे गाय दूध ही नहीं देती। जब कभी उसका बच्चा मर जाता है तो वह दूध देना भी बंद कर देती है। ऐसी दशा में ग्वाले लोग बहुधा बछड़े की खाल में भूसा भर कर अथवा किसी लकड़ी के ढांचे पर उसे मढ़ा कर गाय के सामने खड़ा कर दिया करते हैं, जिससे गाय धोखे में आजाती है और उसी खाल को अपना बच्चा समझ कर दूध देने लगती है। किन्तु योरोप और अमेरिका में बच्चा पिलाने की चाल नहीं है। वहाँ गाय को सदा बच्चों से अलग रख कर दूध दुहा जाता है। अतएव वहाँ यह कठिनाई नहीं पड़ती।

दूध दुहने में दो-एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। जहाँ तक संभव हो दूध सदा निश्चित समय पर ही दुहना चाहिए। निश्चित समय के न रहने से गाय अच्छी तरह दूध नहीं देती। इसके अतिरिक्त दुहने का काम भी सदैव एक ही आदमी को करना चाहिए। बार-बार आदमी बदलने से भी दूध कम हो जाता है। दुहने के समय गाय को मारना, पीटना या किसी तरह का कष्ट देना बुरी बात है। इससे बहुधा गाय दूध को थन में रोक लेती है, जिससे दोहरी हानि होती है। एक तो दूध कम मिलता है और दूसरे गाय को दूध रोकने की आदत पड़ जाती है। अतएव हमेशा उसके साथ

प्यार और चुमकार से ही काम लेना चाहिए। भड़काने या डराने वाली कोई चीज़ भी उसके सामने न आने देनी चाहिए। यदि गाय का थन रूखा या कड़ा हो तो उसमें थोड़ी सी वेसलीन, घी, या तेल चुपड़ लेना चाहिये। इससे थन मुलायम होजाता है। ग्वाले लोग बहुधा इसके लिये थन में से थोड़ा सा दूध ही निचोड़ कर लगा लिया करते हैं। किन्तु जैसा कि पहले बीजाणुओं की चर्चा करते हुए बतला आये हैं, इस ढंग से हाथ में और थनों पर हवा के बहुत से बीजाणु आ चिपकते हैं और दूध की धार के साथ मिल जाते हैं। इसलिए ऐसा करना कदापि उचित नहीं। जब आवश्यकता पड़े तो केवल घी या वेसलीन ही लगानी चाहिए।

सुनते हैं इस देश में पहले किसी समय दूध दुहने की कला में बड़े-बड़े उस्ताद लोग मौजूद थे, जो अपने कंधों पर और कुहनी के आगे बाँहों पर तेल की भरी कटोरियाँ रख कर दूध दुहते थे, और फिर भी कटोरियों का एक बूँद तेल न गिरने पाता था। किन्तु अब इस कल और मशीन के युग में हाथ की कलाओं का नाम प्रायः मिटता सा जा रहा है।

(२) मशीन के द्वारा गो-दोहन

इंग्लैंड और अमेरिका में गायें दुहने के लिए प्रायः कलों से काम लिया जाता है। इन कलों के द्वारा एक साथ कई गायों का दूध दुहा जा सकता है। साथ ही इनसे दूध के अंदर मैल, मिट्टी, गर्द अथवा वायु के बीजाणु भी नहीं पहुँच पाते।

दूध दुहने की सबसे पहली मशीन उन्नीसवीं शताब्दी में मेयर नाम के एक अमेरिका-निवासी ने बनाई थी। उसके पश्चात् स्वीडेन, डेनमार्क, जर्मनी आदि कई देशों में इसी प्रकार की कलें तैयार हुईं।

इनसे दूध गाय के स्तनों को दबा-दबा कर निकाला जाता था। किन्तु ये कलें पेंचेली बहुत थीं, और इनसे हर कोई काम नहीं ले सकता था। अतएव कुछ दिनों के बाद इन कलों का व्यवहार उठ गया। अब उनके स्थान में एक दूसरे प्रकार की मशीन तैयार की गयी, जिसमें वैकुअम-द्वारा, अर्थात् हवा के खिंचने से स्तनों का दूध खिँच आता था। इस प्रकार की एक मशीन स्काटलैंड निवासी मार्चलैंड ने सन् १८८६ में तैयार की। इसके दो वर्ष पश्चात् एक दूसरे स्काटलैंडवासी आविष्कर्ता निकोल्सन ने एक दूसरी मशीन उसी सिद्धांत पर तैयार की। पश्चात् इनमें सुधार करके दो-एक और भी नई मशीनें बनाई गयीं। किन्तु इन सबों के द्वारा गाय के स्तन में रक्त-संचालन की क्रिया बन्द होने लगी और उनके स्तन सिकुड़ कर छोटे पड़ने लगे। अतएव सन् १८६५ में डाक्टर लिंड ने एक दूसरी मशीन तैयार की, किन्तु इसमें भी पेंचीलापन बहुत था और इसे साफ़ करने की बड़ी दिक़्क़त थी। कुछ दिनों बाद ग्लासगो शहर में "केनेडी लारेन्स युनिवर्सल मिल्कर" नाम की एक और नयी मशीन निकली, जो पिछली मशीन से बहुत अच्छी थी। इसके द्वारा दो गायें एक साथ दुही जा सकती थीं। सन् १६०७ में इसी ढंग की एक दूसरी मशीन वेल्स नामक एक अंग्रेज़ ने बनाई। यह भी कुछ ही मिनटों में दो गायें एक साथ दुह सकती थी। इन मशीनों के द्वारा दूध उसी प्रकार निकलता था, जैसे बच्चा माँ का दूध मुँह से चूस कर पीता है। अब आजकल "ओमेगा" नाम की एक नयी मशीन इंगलैंड में तैयार हुई है, जो पिछली सब मशीनों से बढ़िया कही जाती है, और जिसके आविष्कर्ता को कई प्रदर्शिनियों में ईनाम भी मिले हैं। अतएव आजकल यह मशीन अधिक लोकप्रिय हो रही है।

कुछ लोगों का कहना है कि मशीन के द्वारा दूध दुहने से गाय में दूध देने की शक्ति शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। साथ ही ऐसे दूध में मक्खन का अंश भी कम निकलता है। मालूम नहीं यह बात कहां तक सच है। इसके अतिरिक्त मशीन से दुहते समय आदि और अंत में कुछ दूध हाथ से भी निकालना पड़ता है, कारण कि थन का सम्पूर्ण दूध मशीन के द्वारा निकालना असंभव है। थन में कुछ दूध बाक़ी रह जाने से कभी-कभी उसमें दूध जम जाता है और कठिन रोग पैदा हो जाता है। साथ ही इससे गाय में दूध देने शक्ति भी घट जाती है।

फूका की पैशाचिक रीति

कलकत्ता और उसके आस-पास के स्थानों में दूध दुहने के लिये एक बड़ी ही घृणित और अमानुषिक रीति से काम लिया जाता है, जिसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इसे 'फूका' की रीति कहते हैं। अभी हाल में महात्मा गाँधी ने अपने 'हरिजन' पत्र में इस विषय पर एक छोटा सा लेख अंगरेज़ी में प्रकाशित किया है, जिसमें उन्होंने 'फूका' का वर्णन देते हुए कुछ अपने विचार भी प्रकट किये हैं। अतएव हम स्वयं इस विषय पर कुछ लिखने के बजाय उसी लेख को यहां अनुवाद रूप में दे देना अधिक अच्छा समझते हैं। नीचे उसी का अनुवाद दिया जाता है:—

"बहुतों को न मालूम होगा कि 'फूका' क्या चीज़ है। इसे रोकने के लिये कलकत्ते में कोई "फूका-निवारिणी सभा" (Anti-phooka Association) क़ायम है यह तो कदाचित् और भी कम लोग जानते होंगे। महाराजाधिराज सर विजयचंद महताब बहादुर तथा जस्टिस सर एल० डब्लू० जे० कस्टेलो (Justice Sir-

L. W. J. Costello) इस सभा के संरक्षक हैं। इसके सभापति हैं श्रीयुत् रामकुमार बाँगर। द.फ़्र का पता है:— नंबर ६५, पथरिया घाट स्ट्रीट, कलकत्ता। इसके मंत्री महाशय 'फूका' का वर्णन इस प्रकार लिखते हैं:—

"मैं आपको सूचित करना चाहता हूँ कि 'फूका' नाम का बलात्कार हर एक दूध देने वाले जानवर पर दिन में दो बार किया जाता है। पशु के चारों पैर चार मज़बूत खम्भों से .खूब कसकर बाँध दिये जाते हैं। और दो मनुष्य पशु को इस प्रकार जकड़ कर पकड़े रहते हैं कि वह किसी तरह हिल-डोल न सके। बाद में एक २२ इंच लम्बा और आठ इंच घेरे का बाँस अथवा पाइप का टुकड़ा पशु के जननेन्द्रिय में बलपूर्वक प्रविष्ट कर दिया जाता है, और एक आदमी उसमें .खूब हवा भर देता है, जिससे पशु का गर्भाशय फूल कर तन जाता है। इससे अन्दर की दुग्ध-ग्रंथियों पर दबाव पड़ने के कारण दूध दुहने वाला ग्वाला थन से दूध की अंतिम बूँद तक निचोड़ने में समर्थ होता है। उसके दूध दुहने की क्रिया भी इतनी निष्ठुर होती है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। इस प्रकार बड़ी देर तक यह कार्य होता रहता है, यहाँ तक कि जानवर पीड़ा के मारे बेहाल होजाता है और उसके थन में से रक्त की बूँदें टपकने लगती हैं। कभी-कभी रक्त की कुछ बूँदें दूध के साथ भी मिल जाया करती हैं। बेचारा जानवर हिल-डोल तो सकता नहीं, अतएव चुपचाप इस अमानुषिक अत्याचार को सहा करता है। उसकी पीड़ा का अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि इस समय उसकी सारी देह पसीने से नहा उठती है, और उसके नेत्रों से लगातार आँसू की धारा उसके गालों पर बहती रहती है। यह क्रिया प्रति दिन दो बार की जाती है और प्रायः प्रत्येक बार दुहने के अंत में जानवर बेहोश हो जाता है।"

"मंत्री महाशय ने ऊपर जिस विधि का वर्णन किया है उससे अधिक हृदय-विदारक और कष्टजनक बात ध्यान में लाना ही कठिन है। सभा की एक बैठक की कार्यवाही पढ़ने से मालूम होता है कि इस क्रिया-द्वारा जिन गायों या भैंसों पर यह अत्याचार किया जाता है वे शीघ्र ही बंध्या होजाती हैं। अतएव जिस समय फूका की विधि से भी उनके स्तनों से दूध नहीं निकल सकता उस समय वे क़साइयों के हाथ बेच दी जाती हैं।"

"सभा इन अत्याचारियों पर मुक़द्दमें चलाने का प्रबंध करती है और इसके लिए उसने कुछ गुप्तचर भी लगा रक्खे हैं जो अपराधियों को पकड़ने के लिए सदा सादे वेष में घूमा करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि सभा का कार्य जो कुछ होता है वह अच्छा ही है, किन्तु मेरी समझ में इतने से काम नहीं चल सकता। केवल थोड़े से अपराधियों को दंड दिलवा देने से ही यह अमानुषिकता दूर न हो जायगी। इसके लिए आवश्यक है कि जिन लोगों में ये बुराइयाँ पाई जाती हैं उन्हें इस विषय में समझाया जाय और फूका से होने वाली हानियों को अच्छी तरह बतला दिया जाय। किन्तु सब से अच्छा उपाय इस बुराई को मिटाने का यह है कि कलकत्ते के दूध का सारा कारबार वहाँ का कारपोरेशन स्वयं अपने हाथ में लेले और ग्वालों को तन्ख़्वाह देकर इस काम के लिए अपना नौकर रख ले। तब उन्हें इस बुराई में पड़ने के लिए कोई प्रलोभन नहीं रह जायगा। साथ ही उनका काम भी अफ़सरों की निगरानी में स्वच्छता के साथ होने लगेगा और दूध दुहने के काम में उचित देखरेख रक्खी जा सकेगी। नगरवासियों को भी अपने पैसे के बदले में शुद्ध दूध मिलने का भरोसा होजायगा। और यह दुग्ध-विक्रय-विभाग क्यों न स्वावलम्बी हो सकेगा इसके

लिए कोई कारण नहीं समझ पड़ता । इस पर भी यदि दूध का मूल्य एकाध पाई बढ़ाना आवश्यक ही पड़ जाय तो नगरवासी लोग उसे ख़ुशी से दे लेंगे । निस्संदेह जिस समय म्युनिसिपैलिटी यह काम अपने हाथ में ले लेगी उस समय किसी दूसरे व्यक्ति को दूध का व्यवसाय करने का अधिकार उसी प्रकार न रहेगा, जिस प्रकार आजकल कोई डाक के टिकट या पोस्टकार्ड का व्यवसाय नहीं कर सकता ।"

अब इसमें कोई अधिक टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं । केवल इतना ही कहना है कि यदि प्रत्येक शहर की म्युनिसिपैलिटी (नल के) पानी की तरह दूध का कारबार भी अपने हाथ में ले ले तो शहरवालों के लिए शुद्ध दूध का प्रश्न बहुत कुछ हल होजाय ।

———

बारहवां अध्याय

—:*:*:—
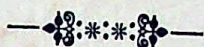
दूध सम्बंधी कुछ उपयोगी आँकड़े

(१)

भारतवर्ष में दूध की पैदावार

भारतवर्ष में प्रतिवर्ष कितना दूध पैदा होता है इसका ठीक-ठीक हिसाब बतलाना कठिन है, कारण इसके लिए पूरे-पूरे आवश्यक आँकड़े ही नहीं मिलते। यहाँ कुछ जाति की गायें तो दिन भर में एक सेर अथवा तीन पाव भी दूध मुश्किल से देती हैं, और कुछ पंद्रह या बीस सेर तक रोज़ दिया करती हैं। इसी प्रकार कुछ गायें केवल पाँच ही छः महीने में दूध बंद कर देती हैं और कुछ दस-ग्यारह महीने तक देती रहती हैं। अस्तु, जब तक इन सबों की अलग-अलग संख्या और शक्ति का पूरा-पूरा हिसाब न मालूम हो, तब तक दूध का परिमाण ठीक-ठीक बतलाना असंभव है। किंतु फिर भी अंदाज़ तो मोटे तौर पर लगाया ही जा सकता है। यहाँ के पशुओं की सरकारी गणना अभी गत पंद्रह-सोलह वर्षों से की जाने लगी है। अस्तु सन् १९३० में जो यहाँ की पशुगणना हुई थी उसी की रिपोर्ट के आधार पर हम नीचे दूध की वार्षिक उत्पत्ति का अंदाज़ा बतलाने का प्रयत्न करते हैं।

*सन् १९३० की पशुगणना के अनुसार इस देश के अंग्रेज़ी प्रांतों में दूध देने वाले पशुओं की संख्या इस प्रकार है:—

---

*सन् १९३५ की गणना की रिपोर्ट कुछ प्रांतों की प्राप्त नहीं हुई इसलिए १९३० की रिपोर्ट को ही आधार माना गया है।

प्रांतों के नाम	गाय	भैंस
मद्रास	५६,२२,२५६	२७,६५,६६४
बम्बई	२७,३६,६२४	१५,०४,०६६
बंगाल	८२,५०,६१०	२,७५,६८६
संयुक्त प्रांत	६२,३२,५२२	४०,८१,५१५
पंजाब	२४,१८,४४४	२७,२७,२६४
बर्मा	१४,६७,३४६	४,०५,७४०
बिहार-उड़ीसा	५७,६२,५२८	१६,२५,७६२
मध्यप्रांत और बरार	४१,२७,८७१	६,४३,२०४
आसाम	१६,५८,१५८	२,२१,७२६
पश्चिमी सीमाप्रांत	२,७७,३६८	१,४८,७१५
अजमेर-मारवाड़	१,३६,१७०	५३,६४३
कुर्ग	३६,०४०	६,८३८
देहली	२१,०७३	२३,३८१
मानपुर परगना	२,०१६	६७०
टोटल	३,८७,८५,४६२	१,४७,८४,५३७

भारतीय रियासतों में इन पशुओं का व्यौरा इस प्रकार मिलता है:—

रियासत	गाय	भैंस
हैदराबाद	२८,४७,३६०	१२,४०,१३२
मैसोर	१५,६६,६०१	४,६२,६५१
ग्वालियर	६,७६,७६६	४,५२,५६६
मध्य देश की रियासतें	१५,५०,५६०	६,२२,८७६
राजपुताना की रियासतें	२०,६७,१६६	८,३४,४४०

मद्रास की रियासतें	५,४०,०११	५४, ८, १३
संयुक्तप्रांत की रियासतें	३,०७,६२४	१,३०,७३६
पंजाब की रियासतें	५,७८,७७१	४,४२,४२२
पश्चिमी भारत	६,३४,७८१	४,२१,७३३
बड़ौदा, काश्मीर तथा और दूसरी रियासतें जिनकी पशु संख्या नहीं मालूम है। इसलिये अंदाज़न	१५,००,०००	१०,००,०००
टोटल	१ ३६,६३,०३८	५६,८२,६७२

निदान देश भर के दूध देनेवाले पशुओं की संख्या इस प्रकार होती है:—

नाम	गाय	भैंस
बृटिश भारत	३,८७ ८५,४६२	१,४७,८४,५३७
देशी रियासतें	१,३६,६३,०३८	५६,८२,६७२
टोटल	५,२४,१८,५००	२,०४,६७,२०९

अर्थात् गाय और भैंस सब मिलकर ५,२४,१८,५०० + २,०४,६७,२०९
=७,२८,८५,७०९

हिसाब की सुविधा के लिए मोटे तौर पर हम गायों की संख्या को सवा पाँच करोड़ तथा भैंसों की संख्या को २ करोड़ ५ लाख मान सकते हैं। अब जिन दिनों पशुओं का दूध बंद रहता है उसे ध्यान में रखकर तथा बछड़ों की ख़ूराक को छोड़ कर दूध का सालाना औसत यदि हर एक गाय पीछे डेढ़ मन और हर एक भैंस पीछे पंद्रह मन मान लिया जाय तो सारे देश में दूध की पैदावार इस भाँति होगी:—

गाय का दूध ५,२५००००० × १$\frac{१}{२}$ मन

= ७ करोड़, ८७ लाख, ५० हज़ार मन

तथा भैंस का दूध २,०५००००० × १५ मन

= ३० करोड़ ७५ लाख मन

अतएव दोनों प्रकार के पशुओं का टोटल दूधः—

७, ८७, ५०, ००० + ३०, ७५, ००, ००० मन

= ३८, ६२, ५०, ००० मन होता है।

भारतवर्ष में लगभग ३५ करोड़ मनुष्य बसते हैं। अतएव हर एक मनुष्य पीछे इस दूध का औसत $\frac{३८,६२,५०,०००}{३५,००,००,०००}$

$= \frac{३०९}{२८०}$ मन

अर्थात् १ मन ४ सेर २$\frac{२}{७}$ छटाँक प्रतिवर्ष हुआ, जो प्रतिदिन के हिसाब से $\frac{३०९}{२८०} \times \frac{४० \times १६}{३६५}$ छटाँक

$= \frac{१,९७,७६०}{१,०२,२००}$ छटाँक,

अर्थात् दो छटाँक से भी कम पड़ता है।

इसमें जो थोड़ा-बहुत दूध भेड़ और बकरियों से प्राप्त होता है उसका हिसाब नहीं जोड़ा गया है। अतएव यदि उसका अंदाज़ भी रख लिया जाय तो यह औसत अधिक से अधिक पूरा दो छटाँक का समझा जा सकता है। किन्तु इसमें से अधिकांश दूध घी और मिठाइयों के रूप में ख़र्च हो जाता है। वास्तव में कितना दूध इस प्रकार घी और मिठाइयों के रूप में ख़र्च होता है इस विषय के ठीक-ठीक आँकड़े अभी तक नहीं तैयार हुए हैं।

फिर भी मोटे तौर पर यदि मान लें :कि कुल दूध का आधा भाग इस प्रकार घी और मिठाइयों के रूप में खप जाता है तो ताज़े दूध की खपत प्रति मनुष्य पीछे केवल एक छटाँक से अधिक नहीं बैठती। अब अन्य देशों में यह खपत कितनी हुआ करती है इसे हम आगे दिखाते हैं।

(२)

भिन्न-भिन्न देशों में दूध की सालाना खपत

देशों के नाम			दूध की खपत प्रति मनुष्य पीछे × मन—सेर
फ़िनलैंड	...	...	१०—१६
*स्वीज़रलैंड	...	...	८—३२
स्वीडेन	...	...	८—२८
नार्वे	...	...	७—०
अमेरिका	...	...	७—३६
कनाडा	...	...	६—१६
ज़ेकोस्लोवेकिया	...	...	५—२६
अस्ट्रिया	...	...	५—२५
*नेदरलैंड्स	...	...	५—१३
*न्यूज़ीलैंड	...	...	४—२८
*आस्ट्रेलिया	...	...	४—२५
इंग्लैंड	...	...	३—३३
जरमनी	...	...	३—१६
फ्रांस	...	...	३—५
*डेनमार्क	...	...	२—३०
भारतवर्ष	...	...	१—४

× उपरोक्त आँकड़ों में छटाँक का हिसाब छोड़ दिया गया है।

*इन देशों से बहुत सा दूध और मक्खन विदेशों में भी भेजा जाता है।

इन आँकड़ों पर दृष्टि डालने से जान पड़ता है कि भारतवर्ष का स्थान दूध की खपत में सब से पीछे है। प्रांतों के विचार से मध्य प्रांत और बम्बई में दूध की सब से अधिक कमी बतलाई जाती है। बंगाल, विहार और उड़ीसा में भी कहा जाता है कि कितने ही गाँवों में दूध नहीं जुरता। किंतु मद्रास, संयुक्त प्रांत और पंजाब की अवस्था अपेक्षाकृत और प्रांतों से अच्छी बतलाई जाती है। जो हो, किंतु आवश्यकता को देखते हुए दूध की कमी सब जगह भयंकर रूप से वर्तमान है। इसमें बिल्कुल संदेह नहीं। और जब तक यह कमी पूरी नहीं की जाती तब तक भारतीयों की शारीरिक उन्नति की आशा रखना केवल निराशा को निमंत्रित करना है।

(३)

विदेशी दूध-घी आदि की आमद

इस देश की दूध-सम्बन्धी कमी कुछ अंशों में विदेशां से मँगा कर पूरी की जाती है। उदाहरणार्थ जमा हुआ दूध, सूखे दूध का चूर्ण, मक्खन, पनीर इत्यादि अनेकों ऐसी वस्तुएँ हैं जो हर साल बाहर से यहाँ मँगाई जाती हैं और जिनका दाम प्रति वर्ष लाखों रुपये विदेशों में भेजना पड़ता है। गत १६३४-३५ के साल में यह सामान यहाँ ७८, २२, ५६८) रुपये का मँगाया गया था, जिसका अलग-अलग व्योरा इस भाँति है:—

सुरक्षित और जमा हुआ दूध ...	४८,३६,६७६) रु०
दूध की बनी हुई चीज़ें ...	१३,६७,७१) रु०
पनीर	८,४३,३६८) रु०
मक्खन	६,२३,६५४) रु०
घी	१४,६११) रु०
वनस्पति घी, चर्बी इत्यादि ...	१,३५,६२४) रु०
टोटल	७८,२२,५६८) रु०

इनका मिलान पिछले वर्षों से करने के लिए नीचे प्रत्येक वस्तु का पाँच वर्ष का व्योरा एक साथ दिया जाता है :—

सुरक्षित और जमा हुआ दूध

(परिमाण हंड्रेडवेट में)

नाम देशों के	१९३०-३१	१९३१-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
बृटिश साम्राज्य	५४,६१२	३०,४१६	४१०२४	५७,७३३	६२,२४३
अन्य देश	१७२,२४१	१,५५,५०९	१,३१,३०८	१,१४,१३७	१,१८,६९८
टोटल ...	२,२६,८५३	१,८५,९२५	१,७२,३३२	१,७१,८७०	१,८०,९४२

(दाम रुपयों में)

नाम देशों के	१९३०-३१	१९३१-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
बृटिश साम्राज्य	२६,१८,३४२	१५,२९,२२८	१५,५७,६२८	२१,९१,९८७	२४ ८०,[illegible]८३
अन्य देश	५२,३६,४४१	४२,०३,७४७	३३,५२,४७२	२३,५९,०६५	२३,५६,५९३
टोटल ...	७८,५४,७८३	५७,३२,९७५	४९,१०,१००	४५,५१,०५२	४८,३६,६७६

बच्चों और रोगियों के लिए दुग्धनिर्मित भोजन

(परिमाण हंड्रेडवेट के अंकों में)

देशों के नाम	१९३०-३१	१९३१-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
बृटिश साम्राज्य	१२,७१८	११,२७२	९,७३५	११,५४१	८,९९९
अन्य देश	६६०	५७२	५८२	४८६	१७५
टोटल ...	१३,३७८	११,८४४	१०,३१७	१२,०२७	९,१७४

(दाम रुपयों में)

देशों के नाम	१९३०-३१	१९३१-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
बृटिश साम्राज्य	२५,३७,०६१	२२,२६,६३३	१८,१५,९४५	१६,००,६३२	१३,४६,०५७
अन्य देश	८३,१३३	७७,५८५	७३, १५३	४०,८६५	२१,६५४
टोटल ...	२६,२०,१९४	२३,०४,२१८	१८,८९,०९८	१६,४१,४९७	१३,६७,७११

पनीर

परिमाण हंड्रेडवेट के अङ्कों में

नाम देशों के	१९३०-३१	१९३१-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
बृटिश साम्राज्य	२,०५०	२,०३७	२,३९१	३,१५२	३,२८३
अन्य देश	८,३९३	५,३१२	६,४६७	६,७१९	७,६४१
टोटल ...	१०,४४३	७,३४९	८,८५८	९,८७१	१०,९२४

दाम रुपयों में

नाम देशों के	१९३०-३१	१९३१-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
बृटिश साम्राज्य	२३५,८२२	१,८०,८३२	२,२७,६६६	२,७६,६०८	२,७२,७१०
अन्य देश	७,६९,६२२	४,५२,६२५	५,३३,४८५	५,३०,६५०	५,७०,६८२
टोटल ...	१०,०५,४४४	६,३३,४५७	७,६१,१५१	८,०७,२५८	८,४३,३९२

मक्खन

परिमाण हंड्रेडवेट में

नाम देशों के	१९३०-३१	१९३-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
वृटिश साम्राज्य ...	२,२७३	३,१६६	३,५५६	४,६१८	५,७६७
अन्यदेश	३५२	४०४	२१६	४८८	४९८
टोटल	२,६२५	३,५७०	३,७७२	५,१०६	६,२६५

दाम रुपयों में

नाम देशों के	१९३०-३१	१९३-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
वृटिश साम्राज्य ...	४,०३,६८५	४,७२,९६५	४,९०,३५०	५,२६,२६५	५,८२,७७४
अन्य देश	६६,७०६	६९,४३२	३३,१५०	५२,०८१	४०,८८०
टोटल	४,७०,३९१	५,४२,३९७	५,२३,५००	५,७८,३४६	६,२३,६५४

घी

परिमाण हंड्रेडवेट में

देशों के नाम	१९३०-३१	१९३१-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
बृटिश साम्राज्य ...	३९२	३०१	९८	४३	७५
अन्यदेश ...	४७२	२,११४	३५८	२३३	२६४
टोटल	८,६४	२,४१५	४,५६	२,७६	३,३९

दाम रुपयों में

देशों के नाम	१९३०-३१	१९३१-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
बृटिश साम्राज्य ...	२५,३५७	१६,९२५	६,३२०	२,७५०	३,६६०
अन्यदेश	२९,६५५	१,१४,६३२	१८,७३९	११,८७१	११,२५१
टोटल	५५,०१२	१,३१,५५७	२५,०५९	१४,६२१	१४९११

वनस्पति-घी चर्बी इत्यादि

परिमाण हंड्रेडवेट में

देशों के नाम	१९३०-३१	१९३१-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
बृटिश साम्राज्य	७८२	६४१	४८४	२११	१८३
अन्य देश	२,९५,२३९	१,१६,२०८	३६,१७५	२,४३८	४,५८९
टोटल ...	२,९६,०२१	१,१६,८४९	३६,६५९	२,६४९	४,७७२

दाम रुपयों में

देशों के नाम	१९३०-३१	१९३१-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
बृटिश साम्राज्य	२९,६३०	२६,७४५	१९,७७७	८,२९७	७,०३१
अन्य देश	१,०८,७२,७६९	४२,१४,८९२	१३,२५,९४८	९४,८७१	१,२८.८९३
टोटल ...	१०९,०३,३९९	४२,४१,६३७	१३,४५,७२५	१,०३,१६८	१,३५,९२४

ऊपर के आँकड़ों को मिलान करने से जान पड़ता है कि सन् १९३३-३४ की अपेक्षा १९३४-३५ में उल्लेखयोग्य वृद्धि वनस्पति घी और जमे हुए दूध की आयात में हुई। वनस्पति घी में यह वृद्धि २६०० हंड्रेडवेट से ४७०० हंड्रेडवेट अथवा एक लाख तीन हज़ार रुपयों से एक लाख छत्तीस हज़ार रुपये तक पहुँची और जमे हुए दूध में एक लाख ७१ हज़ार हंड्रेडवेट से १ लाख ८१ हज़ार हंड्रेडवेट तक अथवा ४५½ लाख रुपये से ४८½ लाख रुपये तक जा पहुँची। पाँचों वर्षों की आयात का मिलान करने से सब से अधिक कमी वनस्पति घी के आँकड़ों में दिखायी देती है। सन् १९३०-३१ में यह क़रीब ३ लाख हंड्रेडवेट यहाँ आया था, किन्तु १९३४-३५ में केवल पौने पांच हजार हंडेडवेट मँगाया गया। परंतु इसका मुख्य कारण यह है कि इधर कुछ दिनों से वनस्पति घी भारतवर्ष में भी बनने लगा है। कानपुर, बम्बई, लायलपुर, तातापुरम् आदि कई स्थानों में वनस्पति घी के कारख़ाने चल रहे हैं, जिनके कारण विदेशों से वनस्पति घी की आयात कम हो गयी। किंतु चर्बी और मछली का तेल अब भी बाहर से बहुत अधिक परिमाण में आता है। बहुत सा जमाया हुआ मछली का तेल जापान से मँगाया जाता है, जो यहाँ घी में मिलावट देने के काम आता है तथा साबुन बनाने के काम में भी लाया जाता है।

जमाया हुआ दूध अथवा सूखा दूध का चूर्ण अधिकतर इस देश में नेदरलैंड्स, इटली, डेनमार्क और आस्ट्रेलिया से मँगाया जाता है। अभी हाल में समाचार-पत्रों द्वारा मालूम हुआ है कि इसका एक कारख़ाना भारतवर्ष में भी कलकत्ता नगर में खुल रहा है। हमारे लिए यह कितने दुःख और लज्जा की बात है कि इङ्गलैंड, डेनमार्क और इटली जैसे नन्हें-नन्हें देश जो सब मिल

कर भारतवर्ष के किसी एक कोने में समा सकते हैं, इतना अधिक दूध पैदा कर लेते हैं कि अपनी आवश्यकता को पूरी करने के बाद लाखों मन दूध हमारे देश में भी भेजते रहते हैं, किन्तु हम अपने रोगियों और नन्हें बच्चों तक को दूध के लिए तरसाते हैं !!! हर साल लाखों बच्चे केवल यहाँ दूध के अभाव से ही रोगों के पंजे में फँसते और मर जाया करते हैं। विलायती जमे हुए दूध के डब्बों से भी कहाँ तक पूरा पड़ सकता है। जब तक स्वयं इस देश में पशुओं की उन्नति और दूध की पैदावार अधिक करने का प्रयास न किया जाय तब तक दशा क्योंकर सुधर सकती है। स्मरण रहे कि शाकाहारी भारतीयों के लिए दूध ही अमृत है, दूध ही प्राण है और दूध ही जीवन है। इसीलिए हमारे पवित्र ग्रंथों में गौ और माता को सबसे ऊँचा स्थान दिया गया। इस समय भी हमारे यहाँ आशीर्वाद देते हुए कहा जाता है 'दूधों नहाओ और पूतों फलो', जिससे जान पड़ता है कि पुत्रों के फलने-फूलने का दूध के साथ अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव यदि देश के सपूतों को हम भली भाँति फलते-फूलते देखना चाहते हैं तो आवश्यकता ही नहीं, बल्कि अनिवार्यता इस बात की है कि दूध का अभाव इस देश से एकबारगी मिटा दिया जाय और दूध की गंगा-जमुना एक बार फिर भारत के घर-घर में वहती हुई दिखाई दें।

॥ इति शुभम् ॥